हंस

वार्षिक पत्रिका 2018

हंसराज कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

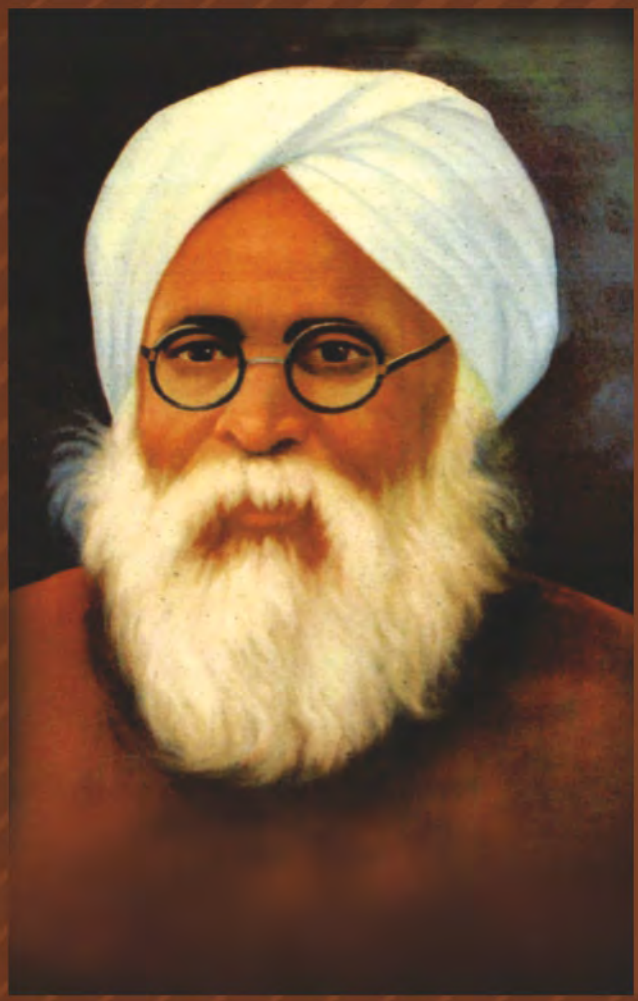

Mahatma Hansraj

(1864-1938)

The college was founded to preserve the memory of Mahatma Hansraj, acknowledged as the founding father of the D.A.V. movement in undivided India. Frail in body but heroic in sprit, Mahatmaji was selflessly dedicated to the course of education. He started his career as the Honorary Founder Headmaster of D.A.V. School, Lahore, in 1886 and over the next 50 years went on to shape the destiny of the D.A.V movement in India.

समन्वयक

श्री सुशील कुमार गुप्ता
(कार्यवाहक प्रशासनिक अधिकारी)

प्रकाशन समिति

डॉ.अमित सहगल, डॉ. प्राची देवरी, डॉ. नीतू शर्मा, डॉ. अवनीश कुमार, डॉ. मुकुन्द माधव मिश्र
श्री एस. एन. प्रसाद, सुश्री रुचि शर्मा, डॉ. विजय कुमार मिश्र, श्री अजीत कुमार, डॉ. फ़रहत जहां

संपादक मंडल

(बाएँ से दाएँ पीछे) सुश्री रूचि शर्मा, डॉ. प्राची देवरी, श्री सुशील कुमार गुप्ता, डॉ. अवनीश कुमार, श्री अजीत कुमार, डॉ. रमा (कार्यवाहक प्राचार्या) डॉ. अमित सहगल, डॉ. विजय कुमार मिश्र, डॉ. नीतू शर्मा (बाएँ से दाएँ आगे) अरीब अहमद, राहुल कुमार, राजीव रंजन यादव, सुयश दीक्षित, नीतेश यादव।

संदेश

डॉ. रमा
कार्यवाहक प्राचार्या

विद्यार्थियों की रचनात्मकता को सही दिशा देने की दृष्टि से कॉलेज की वार्षिक पत्रिका का योगदान सर्वविदित है। हंसराज कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'हंस' विगत वर्षों में अनेकानेक विद्यार्थियों की रचनाओं के प्रकाशन का महत्वपूर्ण मंच रही है। 'हंस' में अपनी रचनाएँ प्रकाशित करवाने में सफल रहे कई विद्यार्थी साहित्य, मीडिया, सिनेमा आदि क्षेत्रों में आज उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए कॉलेज का नाम रौशन कर रहे हैं। अपने विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता को निखारने के ध्येय से प्रति वर्ष हम अपनी वार्षिक-पत्रिका 'हंस' का प्रकाशन करते हैं।

इस पत्रिका में हम साहित्यिक रचनाओं के साथ ही चित्रकला और दूसरी कलात्मक विधाओं को भी उपयुक्त स्थान देकर अपने विद्यार्थियों की कलात्मक रुचि और प्रतिभा के परिष्कार का प्रयास करते हैं।

इस वर्ष 'हंस' अपने परंपरागत स्वरुप और ढाँचे के मूल स्वरूप को बरकरार रखते हुए नए कलेवर में आपके सामने प्रस्तुत है। इसके लिए अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले संपादन मंडल के सभी सदस्यों को मैं हृदय से बधाई देती हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि आप सबको भी उनके ये प्रयास और विद्यार्थियों की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ प्रभावित करेंगी। मैं इस वर्ष के 'हंस' में शामिल सभी विद्यार्थियों की रचनात्मकता की सराहना करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

Editorial

Dr. Amit Sehgal

Convener, Editorial Board

Over the years, our college magazine, Hans, has served as a platform for the students, faculty and staff of Hansraj College to showcase their immense talent and express their thoughts, feelings and insights about the world around them. It has provided a space for students and faculty to communicate with each other across departments and beyond the confines of the classroom.

This editorial board has tried to present to you the best talent that Hansraj has to offer in diverse fields and diverse creative forms such as poetry, prose, photography and painting. The multilingual nature of the magazine is a testament to the diversity of the student and teaching community of Hansraj College. Collecting inputs, sifting through the wide array of contributions and finally designing and printing the magazine has been a challenging yet rewarding experience.

Publishing this new issue of Hans would not have been possible without the efforts of students, colleagues and associates who have contributed to the different stages of putting this magazine together. My special thanks to the student editors Ujjwal Parashar, Areeb Ahmad, Suyash Dixit, Nitesh Yadav, Rajeev Ranjan Yadav, Rahul Kumar and their entire team. You all did a great job! I would also like to thank the students of Kalakriti, the fine arts society, and Pixels, the photography society, who have contributed generously to embellish the magazine with sketches, paintings and images. Last, but not least, I would like to express immense gratitude to my editorial team and the college staff.

I hope you will enjoy reading this issue which we have put together with great effort and dedication.

हिंदी

संपादक मंडल
- डॉ. नीतू शर्मा
- डॉ. विजय कुमार मिश्र

छात्र-संपादक
- सुयश दीक्षित
- नीतेश यादव

विषयानुक्रमणिका

1 नेकी के शॉर्टकट – **डॉ. मुकुंद माधव मिश्र** | 6

2 शिक्षा में विश्वसनीयता का सवाल – **डॉ. नृत्यगोपाल शर्मा** | 8

3 शतरंज के खिलाड़ी का सिनेमाई रूपांतरण – **डॉ. विजय कुमार मिश्र** | 9

4 प्रेम गीत – **बृजमोहन वत्सल** | 14

5 इंसान भी बाँस नहीं होता / हृदय का विद्रोह / दीपावली से दीवाली – **आदित्य रंजन** | 17

6 आज़ादी मेरे दोस्त आज़ादी / मेरी किताबें – **जावेद जुकरैत** | 18

7 सुकून से खड़ा हूँ – **नीतेश 'प्रज्ञान'** | 19

8 क्या लिखूँ / मैं ऐसा हो जाता हूँ – **केशव** | 20

9 ऐ जिंदगी – **साक्षी अहलावत** | 21

10 मेरा वॉचमेन / रोटी – **आदर्श सिंह** | 21

11 प्रवासी साहित्यकार तेजेंदर शर्मा से साक्षात्कार – **सुयश दीक्षित** | 22

12 जब तुमको देखता हूँ – **हरेन्द्र तंवर** | 23

13 उन्ही रास्तों से – **शंकित कुमार** | 23

14 तुम – **सचिन शुक्ला** | 24

15 काम करेगा जो - नाम करेगा वो – **गिरजाशंकर कुशवाहा 'कुशराज'** | 24

16 लम्हें / अस्तित्व / अधूरी चांदनी – **उत्कर्ष सोनी** | 24

17 बचपन / सोशल मीडिया और मानव – **हार्दिक अग्रवाल** | 25

18 मैं ढ़कू तो ढकू कहाँ तक – **पूजा आर्या** | 26

19 मेरी प्यारी दीदी / मेरे जज्बात – **सत्यम** | 27

20 फुटपाथ – **सुयश दीक्षित** | 27

21 विश्वबंधुत्व – **आदित्य रंजन** | 28

22 विश्वास है तुम आओगी – **शम्भू अमलवासी** | 29

23 प्रेरणा – **आयुष पाण्डेय** | 29

24 स्त्री शक्ति – **हर्षित राज श्रीवास्तव** | 30

25 जिजीविषा – **लक्ष्य आनंद** | 31

नेकी के शॉर्टकट

— डॉ. मुकुंद माधव मिश्र
सहायक प्रोफेसर, गणित विभाग

उर्दू में नेकी कहें, हिंदी में भलाई या फिर अंग्रेजी में चैरिटी, इन शब्दों का हर धर्म, सम्प्रदाय और सभ्यता में विशेष महत्त्व रहा है। कोई भी धार्मिक ग्रंथ उठा लीजिये या 'विक्रम-बेताल', 'सिंहासन बत्तीसी' और 'पंचतंत्र की कहानियां' जैसा कोई दन्तकथा संग्रह ले लीजिये, बुरे चरित्र या खलनायक को नायक के चरित्र से कुछ अलग करता है तो वो है उसकी नेकी। और दूर क्यों जाते हैं, राजामौली की कीर्तिमान स्थापित करने वाली फिल्म बाहुबली का नायक भी अपनी नेकी के कारण राजगद्दी का अधिकारी माना गया है। व्यक्तिगत लाभ को भुला कर समाज के विषय में सोचने वालों को श्रेष्ठ स्थान देने का गुरुजनों का निर्णय इस बात को ध्यान में रखते हुए दिया जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना एकल का कोई अस्तित्त्व नहीं होता, और दूरदर्शी इस बात को भली भांति जानते हैं। नेक होने का दावा या दिखावा अपने-अपने स्तर पर हर कोई कर लेता है। लेकिन आज से कुछ समय पहले तक भलाई के काम अलग-अलग समीकरणों से तय होते थे, क्योंकि हर किसी की अपनी गणना होती है और उस गणना के अनुसार हर भले काम के बदले कुछ पा सकने की अपेक्षा। न जाने कितने तरह के फलों का लालच देने के बाद ही कोई "कर्म कर, फल की इच्छा मत कर" जैसे सुवचन सुनाता है। लेकिन कौन सा तबका सबसे ज्यादा नेकी करता था या कर पाता था? आर्थिक आधार पर समाज के बंटवारे को देखें तो मध्यम वर्ग का विचित्र प्राणी सबसे ज्यादा नेक होते हुए भी नेकी नहीं कर पाता था। जहाँ ग़रीब का सारा पुरुषार्थ दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए होता है, अमीर के पास खाने की टेबल पर सब कुछ होता है, भूख के सिवा। इन दोनों किनारों के बीच अटका हुआ हमारा मध्यम वर्ग, न सिर्फ दो वक्त की रोटी का इंतजाम करके चलता है बल्कि सप्ताह में एक बार की बोटी, या शाकाहारी है तो पनीर, भी उसके मेनु में होती है। ये सप्ताह में एक बार का पनीर मध्यमवर्गीय लोगों के लिए दो वक्त की रोटी से भी ज्यादा मायने रखता है। उसे पता है कि इससे ज्यादा कुछ कर पाता तो अभी तक बिल गेट्स बन चुका होता। लेकिन इससे कम में समझौता भी उसे मंजूर नहीं। ग़रीब का क्या है, वो तो एक दिन और भूखा रह लेता है और अपने साथी की मदद कर देता है, या एक डिनर के बदले मंदिर में चढ़ावा चढ़ा देता है, क्योंकि इहलोक की भूख की पीड़ा को वो परलोक में साथ नहीं ले जाना चाहता। वहीं उच्च वर्ग के महानुभावों के पास जायज़-नाजायज़ तरीक़े से कमाए धन की कोई कमी नहीं होती। कभी अपने पापों को कटवाने के लिए, तो कभी इनकम टैक्स विभाग को चकमा देने के लिए, अमीर का पैसा चैरिटी में लगता ही रहता है। और अगर इनमें से भी कोई वजह नहीं है, तो भी अहम की पुष्टि करने के लिए, खुद को श्रेष्ठ एवं ईश्वर तुल्य दिखाने के लिए भी धनवान पैसे तो खर्च करेगा ही। धनवान की नेकी मंदिरों में 11 रुपये का प्रसाद नहीं चढ़ाती, बल्कि आलीशान मंदिर ही बनवा देती है। उस मंदिर के ईश्वर में खुद को पूजा जाता देखने का भ्रम किसी भी दूसरे नशे से अधिक मादक होता है। वर्ना निदा फ़ाज़ली यूं ही नहीं कहते

बच्चा बोला देखकर, मस्जिद आलीशान

अल्लाह तेरे एक को, इतना बड़ा मकान ?

अब वापस आते हैं अपने मध्यमवर्गीय के पास। अगर वो अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान करने लगे तो उसके पनीर का बजट डगमगा जाता है, और बिना कुछ खर्च किये किसी की श्रम से या फ़िर केवल मौखिक सहायता करने का समय भी निकालता है तो घर पहुंचने में देर हो जाएगी, और पनीर ठंडा हो जाएगा, चिकन बेस्वाद हो जाएगा। न जाने क्यूँ, ईश्वर ने इस बेचारे मध्यम वर्गीय को अमीर नहीं बनाया। वो भी अपने भले मन से खूब भलाई करता। ईश्वर और तकदीर के सिर पर चुपचाप अपना ठीकरा फोड़ते हुए ये भला मानस बोटियां तोड़ने में मशरूफ हो जाता है। ये सिलसिला आज से १५ साल पहले तक यूं ही चलता रहा। दुनिया में आई इंटरनेट क्रांति भी हमारे भले मानस के लिए कुछ नहीं लेकर आई। बस बेरोजगार बेटे को नए कंप्यूटर कोर्स कराने की जिम्मेदारी बढ़ गयी। और तब मध्यम वर्ग के लिए जादू का पिटारा लेकर आया अपना ज़ुकरबर्गवा। अरे वही फेसबुक वाला! फेसबुक के आने से मध्यम वर्ग के पास नेकी करने के शॉर्टकट आ गए। बस एक क्लिक और काम खत्म। पनीर की कुर्बानी दिए बिना एक से बढ़कर एक भलाई के काम हो जाते हैं इस फेसबुक पर-- " हींग लगे ना फिटकरी, रंग भी चोखा होय "। देखिये न, किसी बीमार बच्ची के दिल

में छेद हो तो प्रति लाइक या शेयर पर कुछ पैसे उस बच्ची के इलाज के लिए मार्क जुकरबर्ग देते हैं। हम तो भलाई के ठेकेदार हैं, लाइक और शेयर दोनों कर देते हैं ताकि बच्ची को दोगुना पैसे मिलें। अपने पास से एक ढेला खर्च नहीं हुआ और वहाँ किसी का मुफ्त में इलाज हो गया। इससे अच्छा शॉर्टकट क्या हो सकता था। और तो और, यहाँ पुण्य कमाने के भी शॉर्टकट मौजूद हैं। बजरंग बली या साईं बाबा की बहुत सी ऐसी तस्वीरें लोगों ने डाल रखी हैं जिनको लाइक या शेयर करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। जो भी पहली बार ऐसी किसी तस्वीर को डालता है उसके पास बजरंग बली नें स्वयं स्वप्न में आकर इस बात की पुष्टि की होती है, इसलिए शंका का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसी तरह बैठे बिठाए फेसबुक के एक शेयर से किसी खोये हुए बच्चे को चुटकियों में ढूंढ लिया जाता है। मुझे याद है बचपन में छोटी बहन रास्ता भटक गई थी तब पूरे गांव के लोग खोजने में जुट गए थे। तब फेसबुक नहीं था ना। अब तो फेसबुक पर भलाई करने की ऐसी आदत हो गयी है कि 5 मिनट के एक सेशन में कम से कम 10 भले काम करने होते हैं। 2010 में एक चार साल का बच्चा गुम हो गया था जो ३ दिन बाद ही माँ-बाप को वापस मिल गया। लेकिन उन तीन दिनों में ही किसी शुभचिंतक टेक-सेवी ने फेसबुक पर बच्चे के गुम होने की पोस्ट बना कर डाल दी। सुना है पिछले साल वो बच्चा 11 का हुआ तो अपना फेसबुक प्रोफाइल बनाने के बाद सबसे पहली नेकी के तौर पर उसने खुद के ही गुम होने वाली पोस्ट शेयर की। शॉर्टकट में नेकी करने वालों ने उस पोस्ट को तबतक ज़िंदा रखा था। क्या करें, यहाँ भी प्रतियोगिता इतनी बढ़ गयी है कि गुमशुदा की पोस्ट कम पड़ती हैं। फेसबुक पर सबकुछ ठीक ही चल रहा था लेकिन वो मज़ा नहीं आ पा रहा था। एक बार फेसबुक लॉगिन करो तो ऊपर से नीचे तक स्क्रॉल के दौरान कुछ ऐसी भी पोस्ट नज़र आ जाती थीं जिनमें दिमाग़ी कसरत करनी पड़ती थी। तर्कों को आधार बनाकर आंकड़ों के साथ कुछ भी संजीदा लिखा हो तो उसे समझने में कितनी मेहनत करनी पड़ती है। इस सब में भलाई का काम तो मार खा रहा था। सोचने-समझने और तर्क करने जितनी ऊर्जा कहाँ बची होती है दो रोटी और एक चिकन का इंतजाम करने के बाद। फिर आया तारणहार, नेकी करने वालों के लिये रामबाण। इसका नाम लोगों ने व्हाट्सएप दिया था। यहाँ आने से पहले आप अपना दिमाग़ ताले में बंद करके आ सकते हैं। और फिर नेकी तो दिल से होती है।इसमें दिमाग़ का क्या काम! यहाँ विकल्पों की कोई कमी नहीं है। व्हाट्सएप पर भगवान श्रीकृष्ण की 20 मेगापिक्सेल के DSLR से खींची हुई फ़ोटो से लेकर अश्वत्थामा विरचित गीता तक, कैंसर को जड़ से मिटा सकने वाले घरेलू नुस्खे से लेकर दुनिया के सबसे बड़े हृदय विशेषज्ञ की सलाह तक और मुफ्त में 50000 रुपये कमाने के मौके से लेकर बाबा बड़बोलानंद के आशीर्वाद तक सब कुछ सहज उपलब्ध है। ये थोड़े से लालची, थोड़े आलसी पर बहुत ही नेकदिल वाले माध्यम वर्ग के लिए बिलकुल उपर्युक्त साधन सिद्ध हुआ। व्हाट्सएप एक ऐसा शॉर्टकट है जिससे अपनी डिनर टेबल पर बैठा हुआ एक औसत मध्यम वर्गीय दिन भर की नेकी का कोटा पूरा कर लेता है। आपाधापी वाले जीवन में सत्य की परख करने का समय किसके पास है! बस ये नेकी वाले संदेश एक फोन से दूसरे फोन, एक ग्रुप से दूसरे ग्रुप में भेजे जाते रहते हैं। इन्हें भेजने वाले वो हैं जो होमियोपैथी में विश्वास रखते हैं। दवा खा लो, फायदा नहीं तो कोई नुकसान भी नहीं होगा। वैसे ही, मैसेज भेज दो, फायदा नहीं तो कोई नुकसान भी नहीं है। एक बटन दबाने से अगर भलाई करने की अपनी सारी भड़ास निकल जाती है तो हर्ज़ ही क्या है? कम से कम व्हाट्सएप की आभासी दुनिया बाहर की दुनिया जितनी क्रूर नहीं है, झूठी ही सही, बनावटी ही सही, यहाँ नेकी ज़िंदा है। ये आभासी दुनिया एक संघर्षरत मध्यमवर्गीय के पनीर की थाली में चुपके से डोपामाइन या आनंद के हॉर्मोन का छौंक लगा देती है और यही डोपामाइन बेच कर ज़ुकरबर्ग दुनिया के सबसे अमीर लोगों में शुमार हो गए। पर हम जिसे शॉर्टकट समझते हैं वो एक छलावा होता है, या एक झूठी आस, उनके लिए जो कठिन लंबे रास्ते पर या तो चलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते या कुछ दूर चल कर थक चुके होते हैं। सवा रुपये के प्रसाद से ईश्वर को पा लेने की आस है शॉर्टकट, एक चूरण खाकर मृत्यु पर विजय पा लेने की उम्मीद है शॉर्टकट, बेरोजगारी से जूझते युवा के लिए शहर में अपना बंगला बना सकने के दिवास्वप्न हैं शॉर्टकट। लेकिन असल ज़िंदगी में शॉर्टकट नहीं हुआ करते, न सफलता के, न सम्पन्नता के और न ही नेकी के।

■■■

शिक्षा में विश्वसनीयता का सवाल

— डॉ. नृत्यगोपाल शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज

प्रश्नाकुलता ज्ञान की पहली सीढ़ी है। शिक्षा का लक्ष्य भी विद्यार्थी को जिज्ञासु बनाना है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में श्रेयष्कर जिज्ञासा की पड़ताल होनी चाहिए। हमें यह देखना होगा कि हम विश्वसनीय जिज्ञासा उत्पन्न करने में सफल हो रहे हैं या नहीं? सुकरात प्लेटो और अरस्तु में गुरु शिष्य संबंध जिज्ञासा उत्पन्न करने से मजबूत हुआ था समाधान से नहीं। बच्चों और युवाओं में जिज्ञासा उत्पन्न करने से ही हमारी शिक्षा पद्धति गंभीर और जवाबदेह हो सकती है। मौजूद नीति निर्धारक समाज के अभाव का दोष मैकाले की शिक्षा पद्धति पर मढ़कर स्वयं को जिम्मेदारी से हटा लेना पलायनवादी दृष्टिकोण होगा। 1900 से 1950 के आसपास तक का पाँचवीं पास विद्यार्थी हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और गणित में उतना काम करने में सक्षम था जितना आज का स्नातक शायद होता हो?

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की शिक्षा व्यवस्था में नीतिगत और व्यावहारिक स्वरुप दो भिन्न दृष्टियों में विकसित हुआ है। कई शिक्षा आयोगों का गठन हुआ है। 1882 में शिक्षा के लिए हण्टर आयोग गठित हुआ तब से अब तक राधाकृष्ण आयोग, कोठारी आयोग आदि बने। लम्बी चौड़ी कार्ययोजना का मसौदा हर बार आता रहा। भारत की परंपरागत शिक्षा पद्धतियों – गुरुकुल शिक्षा पद्धति, व्याकरणात्मक शिक्षा, श्रव्य शिक्षा आदि को ध्वस्त कर हम मीलों आगे आये हैं।

'साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः' को हमने पीछे छोड़ा है। 'विद्या ददाति विनयं' के उद्देश्य को निरर्थक साबित किया है।

ध्वंस नवीनता की आवश्यकता है। पर, तनिक ठहरकर यह भी सोचना होगा कि ध्वंस की स्थितियां भी अलग-अलग हो सकती हैं। भूकंप के द्वारा किया गया ध्वंस और नए भवन के लिए जर्जर भवन का ध्वंस एक से नहीं हो सकते। वर्तमान शिक्षा में पब्लिक स्कूल व्यवस्था शिक्षिकाओं और समाज के सभी वर्गों के लोगों का शिक्षक रूप में आना बड़े बदलाव हैं।

पब्लिक स्कूल यथा संभव भौतिक साधनों से सम्पन्न हैं। विद्यार्थियों में विश्वसनीय जिज्ञासा के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का आयोजन शिक्षा प्रणाली का अंग बने हैं। विज्ञान मेले, विज्ञान प्रदर्शिनी समसामयिक मुद्दों पर वाद-विवाद, भाषण, लेख आदि की प्रतियोगिताएं होती हैं। नाटक, खेलकूद, संगीत सफल व्यक्तियों के व्याख्यान, पिकनिक, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय दिवसों का आयोजन वैज्ञानिकों-राजनेताओ, साहित्यकारों या इसी प्रकार की प्रतिष्ठित शख्सियतों पर चर्चा-परिचर्चा का आयोजन किया जाता है। अन्य देशों के साथ आवागमन का क्रम भी चल पड़ा है। जाहिर है इससे एक ख़ास तरह का जिज्ञासु और तार्किक समाज खड़ा करने में सहायता मिल रही है अथवा ऐसा समाज खड़ा हो रहा है। इन स्कूलों में महिला कर्मचारियों की संख्या पर्याप्त है। 100 में से एक साड़ी छांटने में जो तार्किक बुद्धि कार्य करती है। उसका उपयोग विद्यार्थियों को सूक्ष्म अन्वेशी बनाने में सहायक होता है। सूक्ष्म विवेचन की क्षमता का बहुआयामी प्रयोग विद्यार्थियों के लिए लाभकारी होता है। महिलाओं के शिक्षा के क्षेत्र में आगमन से व्यापक सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। इसमें बालिकाओं की शिक्षा रूचि विशेष उल्लेखनीय है। हाँ, एक जगह हमें रूककर यह भी सोचना होगा कि महत्वपूर्ण सैद्धांतिक अवसरों पर 'यश बाँस' और 'अनुशासन' की स्थिति का विश्लेषण करना होगा। समाज में बढते अनैतिक आचरण को रोकने के लिए आत्मानुशासन और समाजानुशासन का चिंतन आवश्यक हैं। अशोभन व्यवहार के बहुत से उदाहरण स्कूल विद्यार्थियों से आते हैं। इसे रोकने के कारगर उपाय शिक्षक – शिक्षिका वर्ग को खोजने होंगे।

सरकारी स्कूल, भौतिक साधनों का अभाव झेलते हैं और सरकारी योजनओं के क्रियान्वयन का भार झेलते हैं। शिक्षक – विद्यार्थी प्रतिशत के नियम का पालन छोड़कर शिक्षा-आयोग या सरकार के समस्त निर्देश इन्हें स्वीकार करने होते है। ऐसे में जिज्ञासु विद्यार्थियों का विकास चुनौती है। शिक्षा व्यवस्था को अधिकाधिक विश्वसनीय बनाए जाने की आवश्यकता है।

■■■

शतरंज के खिलाड़ी का सिनेमाई रूपांतरण

— डॉ. विजय कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज

सुप्रसिद्ध फिल्मकार सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर इस नाम से एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक फिल्म का निर्माण किया। हिन्दी साहित्य और सिनेमा के क्षेत्र में एक श्रेष्ठ लेखक और फिल्मकार सत्यजीत के द्वारा हिन्दी साहित्य पर बनायी गयी यह पहली फिल्म थी।

पे्रमचंद की मूल कहानी अवध के नवाब वाजिद अली शाह का समय और दो नवाबों के बीच शतरंज के खेल के बीच उभरती है। लखनऊ के नवाब मिरजा सज्जाद अली और मीर रोशन अली दोनों खाना&पीना भूलकर शतरंज के खेल में व्यस्त रहते हैं। उन दोनों नवाबों की पत्नियाँ उनके शतरंज प्रेम से परेशान रहती हैं। इसके साथ ही कहानी में अवध की राजनीतिकि दुरावस्था का वर्णन भी होता चलता है। घर में शतरंज खेलना मुश्किल हो जाने पर दोनों गोमती किनारे बने वीरान मस्जिद में शतरंज खेलने चले जाते हैं। वीरान मस्जिद में चमगादड़ों का चीखना&चिल्लाना शाम होते ही शुरू हो जाता है। कहानी में इसका वर्णन इस प्रकार है—

"शाम हो गई, खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीले आ आकर अपने&अपने घोंसलों में चिमटी। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों।"

मिरजा और मीर खेलते&खेलते भिड़ जाते हैं और दोनों एक&दूसरे को नीचा दिखाते हैं। अन्त में दोनों तलवार निकाल लेते हैं और एक&दूसरे पर हमला कर देते हैं—

"अंधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने&अपने सिंहासन पर बैठे हुए मानो इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई महराबें, गिरी हुई दीवारें और धूलि धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।"

प्रेमचंद द्वारा लिखित मूल कहानी चार खंडों में विभक्त है पर चारों की परिस्थितियाँ और घटनाएँ एक—दूसरे से गुंथी हुई हैं। फिल्म बनाते समय सत्यजीत राय ने मूल कहानी को तो लिया ही है लेकिन उन्होंने अपनी ओर से शोध कर फिल्म के अनुकूल नए प्रसंगों को जोड़ा भी। 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में दो मुख्य पात्र हैं जो शतरंज के शौकीन हैं और राज्य की दुरावस्था से उदासीन शतरंज में मशगूल रहते हैं। ये चरित्र हैं मिर्जा सज्जाद अली और मीर रौशन अली। कहानी और फिल्म के कथानक में जिस चरित्र के चलते मूल अंतर आता है वह है वाजिद अली शाह। प्रेमचंद ने वाजिद अली शाह का कहानी के प्रारंभ में लखनऊ के पतनोन्मुख युग और उसकी भर्त्सना के लिए और अन्त में कैद में बंद वाजिद अली शाह की स्थिति का ही वर्णन किया है। वे कहानी के प्रारंभ में लिखते हैं—

''नवाब वाजिद अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे&बड़े, अमीर व गरीब विलासिता के रंग में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था तो कोई अफीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के हर भाग में आमोद&प्रमोद का प्राधान्य था। .... संसार में क्या हो रहा है इसकी किसी को खबर न थी।"

"नवाब का हाल इससे भी बदतर था। वहाँ गीतों और तानों की ईजाद होती थी। मनोरंजन के नए&नए लटके, नए&नए नुस्खे सोचे जाते थे"

कहानी के अंत में प्रेमचंद ने एक बार फिर नवाब वाजिद अली शाह का उल्लेख इन शब्दों में किया है— "नवाब वाजिद अली शाह पकड़ लिए गए थे और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान की ओर लिए चली जाती थी। .... लखनऊ का नवाब बंदी बना चला जाता था और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था।"

सत्यजीत राय ने प्रेमचंद के इन्हीं वाक्यों के सूत्र को अपनी फिल्म में कहानी के विस्तार का आधार बनाया। उन्होंने वाजिद अली शाह के विभिन्न पक्षों को अपने गहन शोधपरक पड़ताल के जरिए सामने रखा। उन्होंने वाजिद अली शाह के दरबार, चरित्र आदि का बखूबी फिल्मांकन किया। उन्होंने वाजिद अली शाह की दुर्बलताओं के बावजूद उसके प्रति सहानुभूतिपूर्वक विचार किया। जबकि प्रेमचंद ने नाम मात्र के लिए ही वाजिद अली शाह का उल्लेख किया है। इसका कारण बताते हुए विवेक दुबे लिखते हैं—

"प्रेमचंद का संवेदनात्मक उद्देश्य, राय के संवेदनात्मक उद्देश्य से भिन्न

था। वे अपना पूरा ध्यान कहानी के दो मुख्य पात्रों मिर्जा सज्जाद अली और मीर रोशन अली पर ही रखना चाहते थे। क्योंकि यही उनकी कहानी के उद्देश्य के लिए उचित भी था। वाजिद अली शाह की चारित्रिक विशेषताओं पर विचार करना उनके लिए अनावश्यक था। वे उक्त दो पात्रों के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप से पूरे युग के पतन को रेखांकित करना चाहते थे। प्रेमचंद की अन्य कहानियों के समान इस कहानी के पात्र भी प्रतिनिधि पात्र हैं। यहाँ तो मिर्जा और मीर न सिर्फ अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं बल्कि पूरे समाज के प्रतिनिधियों के रूप में हमारे सामने खड़े हैं। अपने को इन दो पात्रों तक सीमित रखने के कारण ही हमें प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी' में वह एकान्विति मिलती है जो शायद फिल्म में नहीं दिखती। लेकिन इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि कहानी का कलेवर अत्यंत छोटा है और इतनी छोटी कहानी पर पूरी फीचर फिल्म का निर्माण करना किसी प्रकार भी संभव नहीं है। अतः फिल्म में मूल कथानक का विस्तार कर उसमें नये चरित्रों को डालने के पीछे अन्य रचनात्मक कारणों के अलावा राय का एक उद्देश्य मूल कहानी को फिल्म के कलेवर के अनुकूल बनाना भी रहा होगा।"

सत्यजीत राय वाजिद अली शाह के चरित्र और उससे जुड़ी कुछ विशेषताओं को बार&बार रेखांकित करते हैं और उसमें 'उन्हें इस हद तक सफलता मिलती है कि चारित्रिक दुर्बलताओं के बीच भी वह दर्शकों की सहानुभूति बटोरने में सफल रहता है। वाजिद अली शाह के चरित्र के बारे में खुद सत्यजीत राय लिखते हैं—

"मेरे ख्याल में वाजिद अली शाह के चरित्र के दो पक्ष हैं— एक जिसकी आप प्रशंसा कर सकते हैं और दूसरा जिसकी आप प्रशंसा नहीं कर सकते हैं। मैंने एक बार आपको लिखा भी था कि मेरे मन में इस मूर्ख चरित्र के लिए कोई सहानुभूति नहीं है और जब तक सहानुभूति न हो मैं फिल्म नहीं बना सकता। लेकिन आखिर महीनों तक नवाबों, लखनऊ आदि सब चीजों का अध्ययन करने के बाद मैं इस नवाब को एक ऐसे कलाकार के रूप में, एक ऐसे संगीतकार के रूप में देख सका जिसने लखनऊ घराने की गायकी में अपना योगदान दिया। राजा के बारे में एक बहुत बड़ी बात यह थी कि वह संगीत का बहुत बड़ा संरक्षक था।"

वाजिद अली शाह के अतिरिक्त सत्यजीत राय ने अन्य प्रसंगों को भी फिल्म में जोड़ा है, नए चरित्रों की उद्भावना की है और मूल कहानी की कथा, प्रसंगों और चरित्र में आवश्यक परिवर्तन भी किया है। सत्यजीत राय ने मूल कहानी को तो लिया ही है लेकिन इसकी पूरक और समानान्तर जनरल ऑट्रम से संबद्ध प्रसंग फिल्म की कहानी को और गहराई, सार्थकता प्रदान करते हैं। इससे बिखरे हुए राज्य, अंग्रेजी साम्राज्य की गहरी चालें आदि को दर्शक आसानी से समझ पाते हैं। मूल कहानी में इन प्रसंगों के साथ लंदन में लॉर्ड डल्हौजी के सामने बनी योजना आदि का प्रसंग नहीं है। सत्यजीत राय ने यहाँ प्रेमचंद की मूल कहानी और फिल्म को ऐतिहासिकता में परिवर्तित कर दिया है।

यही नहीं राय ने मूल कहानी से इतर मुंशी नंदलाल और कलुआ के चरित्रों को भी गढ़ा है। यह दोनों चरित्र कहानी के पूरक लगते हैं। मुंशी नंदलाल के चरित्र से मीर और मिरजा के खोखले वीरत्व का आभास होता है जो दादा परदादाओं के तलवार के प्रसंग से उभर कर सामने आता है। इसी प्रकार राय ने फिल्म की कहानी के अन्त में कलुआ नामक पात्र की सृष्टि की है। जिसके माध्यम से कथा और फिल्म का मूल कथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। कलुआ मीर और मिरजा के पूछने पर कहता है—

"सभी लोग अंग्रेजों की फौज के डर से गाँव छोड़ गये हैं।' कलुआ के इस कथन से कहानी में आई हुई तत्कालीन परिस्थितियाँ भी परिलक्षित होती हैं— "इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल बच्चों को लेकर देहातों में भाग रहे थे।"

कलुआ की उपस्थिति कहानी का पूरक है।

इस फिल्म में मुंशी नंदलाल और कलुआ के चरित्र को लेकर सत्यजीत राय काफी सजग थे। उन्होंने उन दोनों चरित्रों की सृष्टि के संदर्भ में खुद ही स्पष्ट किया है। इन दोनों चरित्रों की उदभावना की आवश्यकता के संदर्भ में रे कहते हैं— मैंने महसूस किया कि इन पात्रों की रचना महत्वपूर्ण है क्योंकि हिन्दू पात्रों को रखने से वाजिद अली शाह के समय में दो धर्मिक संप्रदायों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को स्थापित किया जा सकता है जो उस समय इन वर्गों के बीच मौजूद था। कथानक की दृष्टि से नंदलाल मीर और मिरजा को ब्रिटिश तरीके का शतरंज खेलने के प्रारंभिक ज्ञान की शिक्षा देने का निर्णायक कृत्य करता है, जो फिल्म के अंत में अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं सांकेतिक रूप ग्रहण करता है"

"प्रेमचंद ने अपनी कहानी के अन्त में दिखलाया है कि मीर और मिर्जा एक टूटी—फूटी मस्जिद में शतरंज खेलते हैं। मैंने इस दृश्य की कल्पना करने की कोशिश की और मैं सोचने लगा कि दोनों को कितनी धूल

मिट्टी और गंदगी का सामना करना पड़ा होगा। और ये तब जब हम चमगादड़ों, चूहों, तिलचट्टों और बिच्छुओं की तो बात ही न करें। इस सबसे निबट कर ही वे शांति से शतरंज खेलने बैठ पाए होंगे। तो मैंने निश्चय किया कि मैं मस्जिद दिखाने की बजाय कोई शांत सी ग्रामीण जगह दिखाऊँगा। ऐसी जगह घुटन वाली नवाबी हवेलियों से बिल्कुल उल्टी भी होगी। जब मैंने इस बारे में और सोचा तो मुझे लगा कि बिना किसी नौकर के तो ये दोनों नवाबी लोग बिल्कुल असहाय ही हो जायेंगे। इन्हें तमाम छोटे&मोटे कामों के लिए जैसे हुक्का तैयार करने के लिए, खाना लाने के लिए किसी नौकर की जरूरत तो होगी ही। तो इस जरूरत से कल्लू का जन्म हुआ जो न सिर्फ मीर और मिर्जा का नौकर है बल्कि पूरी फिल्म में आम इंसान का एकमात्र प्रतिनिधि है और अकेला ऐसा व्यक्ति है जिसमें देशभक्ति की भावना दिखाई पड़ती है।"

मूल कहानी और फिल्म में परिवर्तन के संदर्भ में कुछ अत्यधिक रोचक और महत्वपूर्ण बातों की ओर विवेक दुबे भी ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे लिखते हैं—

"हम जब मूल कहानी और पटकथा की तुलना करते हैं तो चरित्रांकन संबंधी एक प्रमुख अंतर यह पाते हैं कि जहाँ प्रेमचंद की कहानी में मीर और मिर्जा की बेगमों के कोई नाम नहीं है वहाँ राय ने फिल्म में दोनों बेगमों को नाम दिए हैं जो क्रमशः नफीस और खुर्शीद हैं। ऐसा करके उन्होंने उन्हें अलग व्यक्तित्व प्रदान कर दिए हैं जबकि कहानी में वे मात्र मीर की बेगम और मिर्जा की बेगम से ही जानी जाती हैं। मीर की बेगम का उसके भांजे से नाजायज संबंध है। इसकी ओर प्रेमचंद ने अपनी कहानी में संकेत किया है लेकिन भांजे को भी न कोई नाम दिया है, न अलग व्यक्तित्व। राय ने न सिर्फ उसको अकील नाम दिया है बल्कि ऐसे दृश्यों का संयोजन भी किया है जिनमें हम उसको अच्छी तरह देख पाते हैं। राय द्वारा फिल्म में इन पात्रों को विस्तार से दिखाने का कारण मीर और मिर्जा के चरित्रों को और अधिक उजागर करना ही है। मीर की पत्नी चाहती है कि वह घर से बाहर ही रहे जिससे उसे अपने प्रेमी से मिलने में बाधा न हो। दूसरी ओर मिर्जा की बीवी को शतरंज की उसकी लत के कारण अपनी यौन इच्छओं की तृप्ति का अवसर ही नहीं मिलता बल्कि फिल्म से प्रतीत यही होता है कि मिर्जा शतरंज में इसीलिए मशगूल रहता है कि वह नपुंसक है और अपनी बेगम को संतुष्ट नहीं कर सकता। मिर्जा हमेशा शतरंज के बहाने से अपनी बीवी के साथ समय बिताने से कतराता रहा है। उसकी बेगम गुस्से में मीर को कोसती रहती है।"

इस संदर्भ में चिदानंद दास गुप्ता के शब्द हैं—

"बीवियों को रति क्रीड़ा चाहिए और खाबिन्दों को शतरंज। दोनों के लिए ये अंततः पैरों के नीचे से खिसकती जमीन के एहसास से आजाद होने के पलायनवादी रास्ते हैं।"

यही नहीं सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की मूल कहानी के अन्त को भी बड़ी ही कुशलता से बदला है। मूल कहानी में मीर और मिरजा आपस में लड़कर मर जाते हैं पर राय ने ऐसा नहीं किया। लीलाधर मांडलाई के अनुसार—

"कहानी में मीर और मिरजा लड़ते हुए मर जाते हैं जो दो व्यक्तियों का मरना है। राय मृत्यु के इस प्रसंग को कहानी से हटाकर अवध के पतन के बाद भी उन्हें एक और बाजी की तैयारी में दिखाते हैं। आशय यही कि सामंतवाद खत्म नहीं होता और यह एक बड़ा अर्थ कहानी को देता है। अंग्रेजों की फौज के प्रवेश के दृश्य साम्राज्यवाद की आमद और ताकत की सूचना देते हैं। समानांतर कथा इस तरह मूल कथा में रूपांतरित होती है। बिना किसी आघात के। फिल्म के पूर्व हिस्सों में दोनों कहानियों में अभिन्नता पैदा करने के लिए या तो वे दृश्य रचते हैं जो उन्हें जोड़े रखे या फिर कमेंट्री (अमिताभ बच्चन का नरेशन) का उपयोग करते हैं। राय जैसे फिल्मकार ही कहानी की मूल आत्मा इस तरह बचा सकता था।"

प्रेमचंद की मूल कहानी के अन्त में हुए इस बदलाव पर अनेक समीक्षकों और खुद राय ने कई बार अपनी राय दी। मूल कहानी में किए गए इस परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट करते हुए डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी ने लिखा है—

"निर्देशक ने गहराई से अनुभूत किया है कि प्रेमचंद, मिरजा और मीर के मरने से जिस व्यवस्था का समूल अंत देखते हैं वह समाप्त नहीं होती, वाजिद अली शाह के समय में पनपने वाले विलास भोगी वर्ग यथावत बना रहता है। केवल उसका रूप बदल जाता है इसलिए कहानी के भावुक अंत की अपेक्षा उसके यथार्थवादी अंत को दिखाना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। .... फिल्म का अन्त अधिक विश्वसनीय धरातल पर हुआ है। मीर और मिरजा जिस व्यवस्था के अंग हैं, वह आज भी मौजूद हैं।"

अंतिम दृश्य के इस परिवर्तन के जरिए राय यह दिखाने में पूरी तरह से सफल रहे कि सामंतवादी और नवाबी प्रवृति का खात्मा नहीं हुआ, वह मरा नहीं है, उसके अवशेष आज भी हमारे बीच मौजूद हैं।

इस सबके बीच इस कहानी के रूपांतरण की सफलता के पीछे एक बड़ी भूमिका पात्रों के चयन की रही। राय ने कहानी के अनुरूप न केवल कथा में परिवर्तन किया बल्कि इसमें भूमिका निभाने वाले पात्रों

के चयन में भी काफी सतर्कता बरती। इस संबंध में पात्रों के चयन, उनके साथ राय के संबंध और सामंजस्य का जिक्र करते हुए लीलाधर मांडलोई लिखते हैं—

"स्क्रीन पर कहानी के आने में प्रमुख होते हैं किरदार। राय की हर फिल्म में किरदारों का चयन बहुत सोच—विचार के बाद होता है। चयन के बाद उनको किसी भी कारण बदलना स्वयं राय के लिए मुमकिन नहीं हुआ। अमजद खान (नवाब वाजिद अली शाह) के अस्वस्थ होने पर राय ने शूटिंग उनके स्वस्थ होने तक बढ़ा दी थी। अपने चयन पर इतना भरोसा कम ही निर्देशक करते हैं। हिन्दी में पहली फिल्म करते हुए श्रेष्ठतम कलाकारों का उनका चयन काबिले तारीफ है। संजीव कुमार (मिर्जा सज्जाद अली), रिचर्ड एटनबरो (ऑटरम), शबाना आजमी (सज्जाद अली की बेगम), बवीना (नवाब शाह की माँ), डेविड (मुंशी नंदलाल), विक्टर बनर्जी (वजीर आजम), फारूख शेख (अकील), टॉम अल्टन (कैप्टन वेस्टन), लीला मिश्र (हिरिया), बैरी जॉन (डॉ. जोजेफ फेयटर), समर्थ नारायण (कल्लू) आदि। इस कास्टिंग के लिए काफी होमवर्क की जरूरत थी। जिसमें हर कलाकार की रेंज, मैनरिज्म, संवाद अदायगी, उच्चारण, लहजा, भंगिमाएँ, अंग—संचालन का सूक्ष्म अध्ययन अपरिहार्य था। किरदारों को ध्यान में रखकर ही संवाद लिखना मुमकिन होता है। उनकी भूमिका को अंत तक एक लय में बांधना होता है।

पात्रों के नाम की मौलिक उद्भावना, नए प्रसंगों की उद्भावना और उसका समावेश, कथा का विस्तार आदि के साथ&साथ फिल्म के अन्त में किए गए परिवर्तन आदि से सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की मूल कहानी के संवेदनात्मक उद्देश्य की नकारात्मक क्षति करने की जगह उसे और अधिक गहराई प्रदान की। फिल्म के अंतिम दृश्य के विषय में हरीश कुमार लिखते हैं—

"मिरजा&मीर का शतरंज के खेल में आपसी झगड़ा होने पर, मिरजा मीर पर गोली चला देता है जो उसकी बाँह में लगती है। दूसरी ओर गाँव के रास्ते पर अंग्रेजों की फौज चली आ रही है। यह सब देखकर कलुआ मिरजा और मीर को कहता है 'अंग्रेजों की फौज को भगाने के लिए कोई बन्दूक नहीं उठाता।' यह फिल्म की चरम सीमा है। यहाँ मिरजा गोली लगी बाँह को लेकर खड़ा है। निस्सहाय, शून्य में ताकता हुआ। अंग्रेजी फौज जाने के बाद बाजी फिर जुट जाती है। मिरजा शतरंज की बाजी से बादशाह को हटा देता है। प्रतीक रूप में लखनऊ से यह वाजिद अली शाह का सत्ताच्युत होना ही है।"

बहरहाल, सत्यजीत राय द्वारा निर्मित इस फिल्म के प्रदर्शन के बाद ऐसा भी नहीं है कि केवल प्रशंसा ही सुनने को मिली हो। बल्कि अनेक आलोचकों ने इस फिल्म के विविध पक्षों पर राय की जमकर आलोचना की। हालाँकि राय ने फिल्म में किए गए परिवर्तन आदि को लेकर एक&एक आरोप के जवाब में उसके कारण गिनाए और स्पष्टीकरण दिया। फिल्म में किए गए परिवर्तन आदि के प्रभाव के महत्व को बताते हुए डॉ. सुरेन्द्रनाथ तिवारी लिखते हैं—

"कहानी में जो ऐतिहासिक अंश दब सा गया है या प्रमुखता से सामने नहीं आता फिल्म में वह ऐतिहासिक पक्ष पूरी तरह से उद्घाटित होता है। सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की कहानी में वर्णित ऐतिहासिक वातावरण को तथ्यों के आधार पर इतिहाससम्मत बना दिया है। प्रेमचंद वाजिद अली शाह, रेजीडेंट और अंग्रेजी फौज का उल्लेख तो करते हैं परंतु अपनी कल्पना से वे ऐतिहासिक तथ्यों को दूर रखते हैं। सत्यजीत राय ने कल्पना और तथ्य दोनों को फिल्म में अनुस्यूत कर दिया है। परिणामतः फिल्म में शतरंज का खेल केवल खेल नहीं रह जाता। उसका विस्तार तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक जीवन तक हो जाता है और सभी पात्र मोहरे दिखाई पड़ते हैं और सभी घटनाएँ शतरंज की चालों की तरह क्रियाशील अनुभूत होती हैं।"

हालाँकि फिल्म को लेकर मिली जुली प्रतिक्रिया रही। प्रेमचंद साहित्य के अनेक विद्वानों ने मूल कथानक के विस्तार और परिवर्तन पर निराशा व्यक्त की। उनके अनुसार ऐसा करने से एकान्विति भंग हुई और प्रभाव कमजोर हो गया। इस संबंध में डॉ. लोठार लुत्से कुछ प्रश्न खड़ा करते हैं—

"क्या एक कहानी, जिसका उद्देश्य एक क्षण में प्रभाव डालना है, एक पूरी फिल्म के लिए पर्याप्त सामग्री, पर्याप्त तत्व मुहैया कर भी सकती है? .... साहित्य को सफलता से परदे पर लाना वह कितना भी दुर्लभ हो, प्रायः उपन्यासों के आधार पर ही होता है... राय की पटकथा, बजाय इस कहानी के विस्तार के, एक ऐसे संपूर्ण 'कुछ' में उसकी स्फीति तो नहीं थी, जो अंत में .... किसी को भी वाक़ई खुश नहीं करती?"

वहीं दूसरी ओर चिदानंद दास गुप्ता जैसे आलोचक भी हैं जो इस फिल्म के बारे में इस प्रकार से अपनी राय रखते हैं—

"शतरंज के खिलाड़ी को राय की अनोखी संरचना वाली फिल्म कहा जा सकता है। फिल्म में एक& दूसरे को काटती हुई दो गाँठें हैं&वृत्तचित्र के रूप में और कथेतर के रूप में। जहाँ अंग्रेजों की कारस्तानी को संवादों में महत्तर बलाघात तथा अनुप्रेरणा के विश्लेषण

के माध्यम से दिखाया गया है, वहीं भारतीय पक्ष, जो संभवतः कम वर्णित है, ज्यादा सांकेतिक है। रचना की यह खास कमजोरी&राय की फिल्मों में ऐसी कमजोरी विरले ही देखने को मिलती है& समवेत प्रभाव पैदा नहीं होने देती।.... शतरंज के खिलाड़ी को देखकर ऐसा लगता है कि राय कई&कई गेंदों से एक ही साथ खेलने की बाजीगरी दिखा रहे हों।"

राय ने इस फिल्म में अवध के पतन के साथ&साथ उस कालखंड का पूरा खाका खींचा है। उन्होंने अंग्रेजों की चाल, स्थिति को भी प्रस्तुत किया है। इस सबके बारे में स्वयं सत्यजीत राय का कहना है कि—

"मैं सामंतवादी और उपनिवेशवादी दो नकारात्मक शक्तियों का चित्रण कर रहा था। मुझे वाजिद और डलहौजी दोनों की भर्त्सना करनी थी। चुनौती यह थी कि मैं दोनों पक्षों के कुछ सकारात्मक पक्ष दिखाकर ... उनके प्रतिनिधियों में कुछ मानवीय गुण डालकर इस भर्त्सना को रोचक बनाना चाहता था। ये गुण मेरे द्वारा कल्पित नहीं हैं बल्कि इनके ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। मैं जानता था कि इससे मेरा दृष्टिकोण थोड़ा अनिश्चित हो जाएगा। लेकिन मैंने शतरंज को कभी भी ऐसी कहानी के रूप में नहीं देखा जिसमें आप खुलकर किसी एक पक्ष की वकालत कर सकें। मैंने उसको हमेशा दो संस्कृतियों की टक्कर के प्रति निर्मम किंतु गंभीर चिंतनमय दृष्टि के रूप में देखा&एक निष्प्राण और बौद्धिक संस्कृति और दूसरी ऊर्जस्वित और कुटिल। मैंने इन दो घोड़ों के बीच के अनेक रंगों का भी ध्यान रखा। ... आपको इस फिल्म को बहुत बारीकी से देखना होगा।"

वैसे तो सत्यजीत राय की इस फिल्म के प्रदर्शन के बाद भारतीय और पाश्चात्य सभी प्रकार के समीक्षकों, आलोचकों ने अपनी प्रतिक्रिया दी परन्तु अधिकांश भारतीय विद्वानों ने जहाँ इसे कृति की आत्मा और उसमें किए गए परिवर्तनों के इर्द&गिर्द रखी तो पाश्चात्य समीक्षकों ने फिल्म माध्यम की संरचना को अपनी आलोचना के केन्द्र में रखकर अपनी राय दी। कहना न होगा कि पाश्चात्य समीक्षा सकारात्मक और प्रशंसात्मक रही। वाशिंगटन स्टार में रैम डोलिंग ने लिखा— "तकनीकी कौशल से स्तंभित करने वाली नहीं, वरन चाक्षुष रूप से मोहित करने वाली तथा भावनाओं को तृप्त करने वाली फिल्म है।"

वहीं जुडिथ मार्टिन ने जहाँ इस फिल्म को सुकोमल वैभव और विश्रांतिमय सुख के गुणों से युक्त माना तो विन्सेंट कैनेबी ने निर्देशक द्वारा सामाजिक व्यंग्य को अधिक विनम्रता, संतुलन और सुरुचि के साथ प्रस्तुत की गयी फिल्म के रूप में स्वीकारा। इसके अतिरिक्त कैथरीन कैरोल, डैविड रॉबिनसन, कैरोल बुक्स, डैविड रोजेन बाम आदि समीक्षकों ने भी राय की इस फिल्म को सकारात्मक ढंग से ही लिया।

जबकि इन समीक्षाओं और आलोचनाओं के बीच लीलाधर मांडलोई लिखते हैं—

"सत्यजीत राय को शतरंज के खिलाड़ी की मूलकथा को अपने काल बोध और दृष्टि से पुनर्सृजित करने का हक मिलना ही चाहिए। फिल्म माध्यम में कथा को रूपांतरित करने के लिए उन तमाम तकाजों और जरूरतों को छूट देना भी जरूरी है जिसकी अपेक्षा एक निर्देशक करता है। एक दर्शक या समीक्षक का सरोकार यह होना चाहिए कि वह कृति फिल्म के मानदंडों पर कितनी खरी या खोटी है। सिर्फ साहित्य को केन्द्र में रख कर बात आधी अधूरी होगी। क्योंकि समीक्षा पूरी तरह फिल्म की है न सिर्फ कहानी की। यह भी गौरतलब है कि एक निर्देशक ने कहानी की आत्मा को ठीक से पकड़ा या नहीं। यदि आत्मा सुरक्षित है तो निर्देशक की फिल्म संरचना में ली गयी तमाम छूटें स्वीकार्य होनी चाहिए।"

कहना न होगा कि 'शतरंज के खिलाड़ी' न केवल सत्यजीत राय बल्कि हिन्दी सिनेमा जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस फिल्म का दायरा अपने आप में बहुत व्यापक है। औपनिवेशिक दबाव के तहत टूटते भारत के एक हिस्से का चित्रण राय ने अपनी पारंपरिक शैली से काफी हट कर किया है। राय की यह फिल्म सिनेमाई भव्यता की दृष्टि से उनकी सबसे बड़ी फिल्म है। विषय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का दखल और कुशल अभिनेताओं ने भी फिल्म को ऊँचाई प्रदान की है। इ कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी पर आधारित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' में निर्देशक सत्यजीत राय ने मूल कहानी के कथ्य को सुरक्षित रखते हुए कहानी के शब्दों में झलकने वाले समय और स्थान विशेष को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और संदर्भ के साथ बड़ी ही खूबसूरती और भव्यता से परदे पर उतार दिया है। इस कहानी को और अधिक सशक्त, ऐतिहासिक, जीवंत और प्रामाणिक बनाने के लिए व्यापक शोध के जरिए इसमें कई नए और समानान्तर प्रसंगों की रचना की। उस युग विशेष की झलक और तत्कालीन परिस्थितियों की कहानी की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्टता और मुखरता के साथ इस फिल्म में उभारने में निर्देशक को पर्याप्त सफलता मिली है। यह फिल्म स्वयं सत्यजीत राय और हिन्दी साहित्य और सिनेमा की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

■■■

प्रेम गीत

— बृजमोहन वत्सल
सहायक प्रोफ़ेसर, गणित विभाग

कमरा नंबर 47, जो हॉस्टल के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही, एकदम से सीधे हाथ पर मुड़कर, सीधे जाकर सबसे अंतिम वाली सीढ़ियों से चढ़कर, प्रथम तल पर इन सीढ़ियों के अंत होते ही, पास के बने वाशरूम के ठीक सामने है। चौधरी चरण सिंह विश्विद्यालय, मेरठ परिसर के आर. के. सिंह हॉस्टल का ये कमरा हम सब के लिए ऐसे मायेने रखता है जैसे हमारा खुद का घर हो। वैसे तो कुछ ही महीने हुए थे और ये परिवार भी कुछ ही महीनों में, मेरे हृदय में ऐसे बस-सा गया था जैसे सारे के सारे मेरे सगे बड़े भाई हों। हॉस्टल में सीनियर को सर या डॉक्टर साब कहने का रिवाज़ था जो हम सब मानते थे क्योंकि कल को हम भी तो सीनियर होंगे ना। नहीं, मैं बिलकुल भी इस कमरे में नहीं रहता था, बल्कि मेरा कमरा तो N-3 था। वही! जो चार रूम बाद में बने थे, ये प्रथम और अंतिम तल पर ही है, कमरा नंबर 47 के विपरीत दूसरे छोर पर।

23 दिसम्बर 2004, ये तारीख मुझे बिलकुल याद है क्योंकि आज ही चौधरी चरण सिंह के जन्मोत्सव पर विश्वविद्यालय के नेता जी सुभाषचन्द्र बोस सभागार में बहुत बड़े वार्षिक राष्ट्रीय कवि सम्मलेन का आयोजन हुआ था। भिन्न-भिन्न जगहों से कविगण आये थे। वाह! अद्भुत काव्य पाठ !

"है ना सर" – मैंने अद्भुत कहकर मेघपाल सर की ओर हल्की भौंह उठाते हुए पूछा।

"तुम तो अभी आये हो डिअर, यहाँ हर साल होता है ऐसा बड़ा प्रोग्राम या तो कवि सम्मलेन या कुछ और!" – मेरी तरफ देखते हुए हलकी मुस्कान के साथ उन्होंने मुझसे कहा।

"सर उनका नाम क्या था जिन्होंने वो प्यार वाली कविता गायी थी" – मैंने रूम में बैठे सभी की तरफ देखते हुए पूछा।

"कमाल थी वो तो! और कितने आराम से, धीरे से, मगन होकर सुनाई, मज़ा आ गया !" – मेरे एक वर्ष सीनियर वेद सर ने तारीफ़ में हाथ उठाते हुए कहा।

"आपको आती है वो कविता सर ?" – वेद सर को आश्चर्य से देखते हुए जानने के लिए मैंने पूछा।

"हाँ वो थी ना कि..... एक बार जीवन में ....." – याद करते-करते वो जैसे ही गुनगुनाने लगे कि तभी मेघपाल सर ने बीच में टोकते हुए पूछा – "अरे यार! नाम क्या था उनका ?"

"उनका नाम सर .....आशीष .....आशीष .....देवल था शायद !" मैंने याद करते हुए कहा।

"नहीं-नहीं, आशीष देवल नहीं, इसका उल्टा था शायद" – मेघपाल सर ने झट से कहा।

"आप सही कह रहे हैं सर, उनका नाम आशीष देवल नहीं है, उनका नाम देवल आशीष है" – वेद सर ने बड़े विश्वास के साथ मेरी तरफ देखते हुए कहा।

"सही है सर, हाँ यही है .... देवल आशीष" – मैंने गर्दन को हिलाते हुए और ऊँगली से मेघपाल सर की ओर इशारा करते हुए कहा।

"अरे सर सुनाओ ना! क्या पंक्ति थी वो जब शुरुवात में कविता शुरू हुई थी ?" – मैंने वेद सर को सुनाने के लिए कहते हुए ख़ुशी के साथ कहा।

"एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये .... एक बार जीवन में प्यार करलो प्रिये... एक बार जीवन में ...." – वेद सर गुनगुनाने लगे।

"सर क्या यही गाते रहोगे ? शुरुवात से सुनाओ ना, बड़ी मज़ेदार थी !" – वेद सर को टोकते हुए मैंने कहा।

"इसे कौनसी याद है" – खिड़की के पास बैठे हरि प्रताप सर ने वेद सर की ओर हँसते हुए कहा।

"हाँ तो !तुझे याद है? तो तू सुनादे" – वेद सर ने फट से अपने दोस्त की खिंचाई करते हुए कहा।

"याद तुममें से किसी को नहीं है और बातें बना रहे हो" – मेघपाल सर ने हम सब को कहा।

"मुझे सर कविता तो याद नहीं पर उसका तरन्नुम याद है" – मैंने मेघपाल सर को कहा और गुनगुनाने लगा.....

"ला ला .. ला ला ला ला ...ला ला ला ...ला ला ला....
ला ला .. ला ला ला ला ...ला ला ला ...ला ला ला....
एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये
एक बार जीवन में .....प्यार कर लो प्रिये"

"वाह! क्या बात है पूरी कविता... ला ला ला ...में ही ख़त्म कर दी" – वेद सर ने हँसते हुए मुझसे कहा।

"अब सर मुझे याद थोड़ी है सारी, मैंने लिखी थोड़ी है जब वो सुना रहे थे, मैं तो बस सुन रहा था" – मैंने वेद सर को जवाब देते हुए कहा।

"कोई नहीं याद कर ले भाई, जब याद आ जाए तब सुना देना" – हरि सर ने मेरी ओर देखते हुए हल्की मुस्कान के साथ कहा।

"याद आ गयी तो लिख लूँगा, पक्का !" – मैंने झट से कहा और

बिस्तर से उठकर दरवाजे की ओर बढ़ने लगा।

मैं गुनगुनाते हुए और वही ... ला ला ला ... करते हुए दरवाजे को पार कर पास वाले वाशरूम के बाहर लगे शीशे में अपने को देखकर, आँखे सिकोड़ते हुए याद करने की कोशिश करने लगा। सच कहूँ तो मुझे कुछ भी याद नहीं आ रहा था। वो कविता थी या गीत, पर जो भी था, दिल को छू लेने वाले शब्द थे। अपने बालों में हल्का पानी लगाके मैं अपने रूम की ओर चल दिया।

रूम का दरवाजा खोलते ही, उलटे हाथ की ओर दीवार पर लिखा एक बड़ा सा नाम मुझे देख रहा था। वैसे तो ये नाम मैंने ही लिखा था। आखिर एक तरफ़ा प्यार और चाहत में आप कर भी क्या सकते हैं। मैं मेरे बिस्तर पर लेट आँखें दीवार पर लिखे नाम पर टिका कर देवल आशीष को गुनगुनाते हुए महसूस करने की कोशिश कर रहा था शायद उनके उस गीत की पंक्तियाँ याद आ जाये जो मेरे दिल में गूँज रही थी। शाम से होते-होते रात हो गयी पर ना वो पंक्तिया सही से याद आ पायी और ना ही नींद। आखिर कुछ तो जादू था उन शब्दों में जो मुझको मेरी अन्दर की आवाज़ से प्रतीत हो रहे थे। बार-बार वही पंक्ति दोहरा रहा था – "एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये ... एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये"।

आज की तरह ना मेरे पास स्मार्ट-फोन था और ना ही इन्टरनेट की सुविधा। स्मार्ट-फोन तो बहुत दूर की बात है तब तो मेरे या मेरे करीबी दोस्तों में से किसी के पास भी फोन नहीं था। हाँ, विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में इन्टरनेट की सुविधा थी पर मैंने आजतक ई-मेल भी नहीं किया था। आज की बात कुछ और है।

अचानक ना जाने क्या सूझा कि मैं कॉपी और पेन उठाकर अपने बिस्तर पर बैठ गया। उस गीत के शब्द मेरे अंतरमन में जैसे घूम रहे थे और मैं वो शब्द कॉपी पर लिख रहा था। इन शब्दों से ना तो वो कविता बन रही थी और ना ही वो तरन्नुम आ पा रहा था। निराश भी था और उत्साहित भी। ना जाने कब रात अपने चरम पर पहुँच गयी, पता ही ना चला। अब तक मैंने कुछ फैसला अपने आप से कर लिया था और वो पेन उस कॉपी पर कुछ लिखने लगा था।

सुबह होते ही मैं वेद सर के रूम की ओर झट से पहुँच गया जो क्षितिज तल पर था। वेद सर अपने बिस्तर पर ही थे और जागे हुए प्रतीत हो रहे थे।

"सर, वेद सर, सुनो मैंने लिख ली" – ख़ुशी के साथ मैंने कॉपी को आगे करते हुए कहा।

"क्या लिख दिया?"- हल्की हंसी के साथ उन्होंने मेरी तरफ देखा।

"अरे सर जी! पूरी रात काली कर दी पर मैंने हार नहीं मानी, कहो तो सुनाऊ"- मैंने बड़े ही विश्वास के साथ कहा।

"सुना दे भाई, वैसे भी मेरे कहने से रुक थोड़ी जायेगा,....सुना"- उन्होंने मेरी ओर देखते हुए कहा।

"पहले एक बात तो बता दूं सर कि ये वो नहीं है जो कवि ने सुनाई है बल्कि मैंने उनके तरन्नुम पर अपने शब्दों को लिखा है और हाँ! उनकी वो एक पंक्ति मैंने ली है जो हम सबको याद है" – थोड़ा विस्तार देते हुए मैंने कहा।

"कौन सी पंक्ति?"- वेद सर ने पूछा।

"वही सर !.. एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये"- बड़ी ही ख़ुशी के साथ मैंने कहा।

"ठीक है अब सुना भी दे"- हल्की उत्सुकता के साथ वेद सर ने मुझे सुनाने को कहते हुए कहा।

"हाँ सर"- कहते हुए मैंने वो तरन्नुम याद करते हुए अपनी लिखी पंक्तियाँ सुनानी शुरू कर दी।

"स्वप्न सलोने दिखाओ तो नयन को
नयनों में भर दो प्रेम के तरल को
तरल बना दो इस हृदय प्रबल को
प्रबल धरा में खिला दो कमल को
तो कमल से अधरों का पान कर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये ।।"

"ये तूने लिखी है ?"- बड़े ही आश्चर्य के साथ मेरी तरफ देखते हुए वेद सर ने पूछा।

"हाँ सर! कैसी लगी ?"- मैंने जानने के लिए पूछा।

"बस ये ही लिखी है ?"- वेद सर ने मेरी तरफ देखते हुए पूछा।

"हाँ सर और भी है आगे ...."- ख़ुशी के साथ मैंने कहा।

उनके चेहरे से लग रहा था कि उनको मेरी लिखी पंक्तियाँ पसंद आयी है। चूँकि वो पहले हमें कई बार किसी अन्य कवि की एक कविता अनेकों बार सुना चुके थे तो जाहिर है कि अगर इन्हें पसंद आ गयी तो बाकी को भी आयेगी। यही मन में सोचते हुए मैंने अगली पंक्तियाँ पढ़ी।

"शीतल से तन में है भानु की दहक सी
दहक ये उर में मुरली की चहक सी
चहक उपवन में जैसे कोयलिया गाई हो
गाये गीत दिल ने जैसे मीरा ही समाई हो
तो मीरा के ही रूप का श्रृंगार भर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये।।"

"अरे वाह! क्या बात है, शब्द बड़े ठीक लगाये है तूने"- वेद सर ने ख़ुशी के साथ प्रशंसा करते हुए कहा।

"सही बताओ सर, अच्छी लगी आपको?"- मैंने मुस्कुराते हुए पूछा।

"बहुत बढ़िया है डिअर, लिख-लिख और लिख आगे, मज़ेदार है। मुझे तो अच्छी लगी सच में।" उन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा।

"पहले सर आगे की भी तो सुन लो !"- मैंने कॉपी की तरफ देखते हुए कहा।

"अच्छा! और भी लिखी है? तो सुना पूरी"- बिस्तर पर हलके से बैठते हुए मेरी अगली पंक्तिया सुनने के लिए मेरी ओर हाथ से इशारा करते हुए उन्होंने कहा।

कुछ ना कहते हुए मैंने अगली पंक्तियाँ पढ़नी शुरू कर दी।

"प्रेम के प्रकाश में अँधेरा तो विफल है
विफल है मजनूं पर प्रेम हर पल है
पल भर की ये ज़वानी चंचल है
चंचल मन में मची सी हलचल है
तो हलचल तन की स्वीकार कर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये।।"

"आह! क्या बात है डिअर, बड़ी सही लिखी है"- प्रशंसा के स्वर में उन्होंने मुझसे कहा।

"सर मेरी पहली कविता है!"- अपने आप को उत्साह देते हुए मैंने कहा और अगली पंक्तियाँ पढ़नी शुरू दी।

"प्रेम की ये ज्योत प्रेम दीप में जलाओ तुम
दीप की किरणों से मन मंदिर महकाओ तुम
मंदिर के प्रेम शंख की यही आवाज़ है
प्रेम बिन ज़िन्दगी रह जाती एक राज़ है
तो राज इस दिल पर बार-बार कर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार करलो प्रिये ।।"

मैं गीत गा ही रहा था कि दरवाजे से हरि सर ने प्रवेश किया और वेद सर की ओर देखते हुए कहा – "नाश्ता करने नहीं चलना है ?"

"हाँ चलते हैं, पहले इसकी कविता तो सुन लें, सारी रात बैठ के लिखी है"- मेरी ओर इशारा करते हुए कहा।

"सर सुनो और बताओ, कैसी है!" - उनको बैठने के लिए कहते हुए मैंने कहा और आगे की पंक्तियाँ पढ़ी।

"यौवन सजा दो अलकों के चमन में
चमन खिला दो ग्रीष्म तन के मिलन में
मिलन कर दो इस उजली धूप का
धूप सा उज़ाला चन्दन के रंग रूप का
तो रूप की तन से आँखें चार कर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये ।।"

"ये तूने ही लिखी है! या देवल आशीष की सुना रहा है?"- हरि सर ने आश्चर्य के साथ मुझसे पूछा।

"लड़के ने रात में जाग कर लिखी हैं। तरन्नुम देवल आशीष का ही है पर सही में शब्दों का इस्तेमाल तो लाजवाब किया है"- वेद सर ने मेरी ओर से उत्तर देते हुए कहा।

कविता को गाते हुए जितनी ख़ुशी मुझे थी उससे कहीं ज्यादा मुझे ख़ुशी इस बात की थी की इनको मेरी लिखी पंक्तियाँ बहुत पसंद आयी थी। चेहरे पर ख़ुशी और खुद पर गर्व के साथ मैंने आगे की पंक्तियाँ पढ़ी।

"प्रेम बिन कैसे तर जाओगी जीवन में
जीवन अपार फंस जाओगी भंवर में
भंवर हृदय में फूल बन जो समाओगी
फूल सी कोमलता हर पल यहाँ पाओगी
तो हर पल की ये मुस्कान भर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार कर लो प्रिये ।।"

हरि सर ने ये पंक्तियाँ सुनने के बाद, मुझे कविता शुरू से सुनाने को कहा जो उनसे छूट गयी थी। मैंने फिर से सारी कविता उसी तरन्नुम में सुनाई जिस तरन्नुम में कवि देवल आशीष ने सुनाई थी। जितनी बार भी मैं सुनाता उतनी ही बार ये मुझे याद होती जाती। कमरे से निकल कर हम नाश्ता करने गये और वहां पर मिले दूसरे सीनियर और दोस्तों से भी ये पंक्तियाँ सांझा की। कई दिनों तक मैं ये गाता रहा और कवि देवल आशीष जी को हमेशा याद करते हुए सबको सुनाता रहा। सभी का कविता के प्रति रुझान सकारात्मक था एवं मुझे और लिखने के लिए प्रेरित करते।

कभी-कभी लगता था कि अगर मैं कवि देवल आशीष से मिला तो उनको ये ज़रूर सुनाऊंगा। जिनकी वजह से मैं ये कविता लिख पाया था। मेरी पहली कविता के बाद मैंने कई सालों में जब भी समय मिला, सौ से ज्यादा कविताएँ लिखी जिनको मैं आज सुनाता हूँ और गाता हूँ कुछ अपने नए तरन्नुमों के साथ।

इन्टरनेट के माध्यम से पता चला कि गीतकार कवि देवल आशीष का निधन 4 जून 2013 को लखनऊ में हो गया। इस ख़बर के साथ मेरा उनसे मिलने का सपना भी समाप्त हो गया पर उनकी कवितायें और गीत आज भी मेरे साथ हैं। कवि देवल आशीष को मेरी कविताएँ ही मेरी सच्ची श्रद्धांजलि है। आज भी जब ये प्रेम गीत गाता हूँ तो इस कवि की आवाज़ मेरे होंठों से सुनाई देती है और जब भी इस गीत को पढ़ता हूँ तो नयी पंक्तियाँ अपने आप जुड़ती चली जाती है।

"प्रेम में विरह की मुझे घेरे परछाई है
परछाई तन पर जैसे आत्मा समाई है
आत्मा ये प्यार वाली किसने जगाई है
जागते लोगो को दिया धोखा ही दिखाई है
तो धोखे वाली रात में प्रकाश भर लो प्रिये
एक बार जीवन में प्यार करलो प्रिये ।।"
*** इस एकलव्य का अपने गुरु को नमन ! शत-शत नमन !! ***

■■■

इंसान भी बाँस नहीं होता

— आदित्य रंजन
हिंदी (विशेष), द्वितीय वर्ष

एक बरगद का पेड़
बड़ा तानाशाह होकर,
फैलाकर अपनी तनाएँ
पहले उनके अंदर ढका,
बाग से सभी पेड़ों को
फिर,
आम अमरूद शीशम को समझाकर
नीम के पेड़ को उखाड़
लगवा दिया, बगल के दूसरे बाग में
चार फीट गहरे गड्ढे में धंसा दिया
उस बड़े नीम के पेड़ को

पर बेचारा नीम, झुकने लगा
उसे एक लंबे डंडे से बांध खड़ा किया गया
पानी की टोटी उसके जड़ में घुसा दी
पर उसकी आत्मा अटकी थी
दातुन तोड़ने वाले लड़के में
पत्ते लेने वाली बुढ़िया में
उसके ऊपर फैली करेले के लताओं में
आखिरकार, सूख कर लटक गया वो नीम

गिरे पेड़ पर चढ़कर सफेद कुर्ते वाले ने
लोगों को बताना शुरू किया
नीम का पेड़ गन्ना नहीं होता,
जो काटकर कहीं और लगा दिया

अचानक भीड़ में से किसी ने कहा
इंसान भी बाँस नहीं होता।

■■■

हृदय का विद्रोह

— आदित्य रंजन
हिंदी (विशेष), द्वितीय वर्ष

क्या किसी का नियंत्रण नहीं होता?

हृदय की धड़कनों पर,

क्या इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है?

हमारे शरीर में,

शायद

इन धड़कनों के रूकने से अधिक वीभत्स है

इनका अचानक तेज हो जाना

मुझे शिकायत है अपने हृदय से

आखिर क्यों तेज हो जाती है इसकी गति,

उस चेहरे के सामने आ जाने पर

क्या, ये हृदय की बढ़ी गति

प्रतिफलन है ?

होठों की चुप्पी में कैद कुछ शब्दों का,

झुकी हुई आंखों में कैद उस लज्जा का,

सुलझी हुई मुस्कान में कैद निराशा का,

या, दूसरे हृदय तक जाने को प्रतिबद्ध

वह एक संगीत है,

हो सकता है,ये बढ़ी हुई धड़कनें

आवाज हो हृदय के विद्रोह का

जिसे बताया है मैंने,

अब उस चेहरे से प्रेम नहीं है मुझे.....

■■■

दीपावली से दीवाली

— **आदित्य रंजन**
हिंदी (विशेष), द्वितीय वर्ष

दीपावली पहले आती थी
हल्की सर्द रातों की शुरुआत में
पर अब गर्म दिनों में मनाई जाती है 'दिवाली'
ऐसा होने से,
सूख गया है दीपावली के दिये का तेल
पैसे से ले आयी जाती है झालरें
फिर पैसे देकर जलवाई जाती हैं झालरें
दीपावली के दियों के तेल
पैसों से नहीं आते थे,,बल्कि
पूरा परिवार मिलकर भरता था खुशियां
प्रेमी प्रेमिका भरते थे अपना प्यार
किसान भरता था संतोषजनक मुस्कान
बुजुर्ग इसे जलाते थे अपने आशीर्वादों से

एक निराश प्रेमी बता रहा था अपनी प्रेमिका से
उसने दीपावली के दिये से जलाई है फुलझड़ियां,

अब कोई उसे सिखाये
कैसे जलाएं इन झालरों से फुलझड़ी
क्या इन झालरों की शुरुआत तब से हुई,
जब जवान लड़का माँ से दूर नौकरी करने लगा
बुजुर्ग अलग घर के अहाते में रहने लगे
प्रेमिका प्रेमी से दूर हो गयी

या फिर जब किसान मजदूर हो गया।

■■■

आज़ादी मेरे दोस्त आज़ादी

— **जावेद जुकरैत**
एम. ए. हिंदी

हारना मत -बचाना है आज़ादी को जैसे भी हो सके :
वह कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसे मसला जा सके
दो एक या अनेक, विफलताओं से
या लोगों की उपेक्षा या बेदिली से
या बेईमानी से,
या ज़ोर ज़बरदस्ती, सिपाही, तोप
या कारावासों से
सनद रहे...
आज़ादी कहीं से भी यूँ ही नहीं जाया करती
वो इंतज़ार करती है
सब कुछ के चले जाने का
जब बाक़ी नहीं रखी जाती शहीदों की यादें भी
जब मरने लगती हैं
लोगों की आत्माएँ
जब ख़त्म हो जाता है ज़िंदगी का आख़िरी अहसास ..
उस वक़्त जहाँ की हर सम्त से
कूच करता है आज़ादी का ख़याल
और सर उठाता है कोई कमीना
करता है एकछत्र राज...
साथी...
क्या जीत महान होती है ?
हाँ शायद, होती होगी-
पर अब, ऐसा लगता है ..
ऐसा भी वक़्त गुज़रा होगा
जब पराजय महान होती होगी
जब महान होगी..
मृत्यु और व्याकुलता...

■■■

मेरी किताबें

— **जावेद जुकरैत**
एम. ए. हिंदी

जो नहीं जानती कि मैं हूँ भी

उतना ही मेरा हिस्सा है

जितना मेरा नुकीला चेहरा

औसत से कान और शहद सी आँखें

आइने मैं दिखाई तक नहीं पड़ता मेरा अक़्स

जिसे टटोलता हूँ अक्सर

गद्देदार हाथों की मख़मली गोलाइयों से

और पी जाता हूँ

ये कड़वा सच कि असली शब्द

जो मुझे कर रहे हैं व्यक्त, उन्हीं पन्नों में हैं

जो नहीं जानते मुझे ,

उनमें नहीं जिन्हें लिखा है मैंने ...

यूँ ही है आत्माओं के साथ

चलता ये आलाप...!!!

■■■

सुकून से खड़ा हूँ

— **नीतेश 'प्रज्ञान'**
बी.ए.(विशेष)हिंदी द्वितीय वर्ष

बेचैनी में बैठने से अच्छा है कि

सुकून से खड़े हो जाओ

शायद,टपकते हुए आँसू

टिमटिमाती हुई आशा बन जाये

घने बादलों के बीच

नेपथ्य पर पहुंचकर

विकल हुई नज़रे

उम्मीद की तलाश में,

मानक पर रगड़ा भी गया,

पर मैन कोई प्रतिक्रिया नही दी

शिथिल पड़ा मिट रहा हूँ मैं,

शून्यता की असीमता में,

रुंधी हुई आवाज़ में हुंकार नही,

अब मैं हासिये पर हूँ,

अस्तित्व की टकराहट रोज होती है,

विखरता हूँ,टूटती है उम्मीद,

'मंच' बहुत 'बड़ा' लगता है पास से

मैं दूर हूँ पर छोटा नहीं

सुकून से खड़ा हूँ।

■■■

क्या लिखूँ

— **केशव**
रसायन विज्ञान, द्वितीय वर्ष

कॉलेज की मैगज़ीन छपने वाली है,
मिला मुझे यह समाचार।
सोचा... तो क्या मैं लिख डालूं,
आर्टिकल दो चार।
कहानी लिखूँ या कविता लिखूँ,
या फिर लिखूँ कोई लेख?
इसके लिए मैं बैठ गया,
टेबल पर सिर टेक।
पापा से पूछा, मम्मी से पूछा,
भैया से पूछा, भाभी से भी पूछा।
फौज पर लिखूँ या भ्रष्टचार पर,
साथ-साथ नोटबंदी भी था विचार।
सोचा बहुत... पर बैठे – बैठे,
सुबह से शाम हो गयी।
और, इन्ही विचारों में खोकर,
यह कविता तैयार हो गयी।

■■■

मैं ऐसा हो जाता हूँ

— **केशव**
रसायन विज्ञान ऑनर्स, द्वितीय वर्ष

तुम्हारी अदाओं का मैं
दीवाना हो जाता हूँ,
बात कर के तुमसे
पिघल जाता हूँ।
मुस्कुराहट देख तुम्हारी
बिखर जाता हूँ,
भावनाओं में तुम्हारी
बह जाता हूँ।
क्या करू मैं ऐसा हो जाता हूँ...
तुम्हारी जिद के आगे
झुक जाता हूँ,
गुस्सा तुम्हारा देख कर
सहम-सा जाता हूँ।
बालों से खेलना तुम्हारा
दिल को छू जाता है,
स्पर्श से तुम्हारे
बिजली – सी पाता हूँ।
क्या करू मैं ऐसा हो जाता हूँ...
तुम्हें भूलने की कोशिश में
अधमरा – सा हो जाता हूँ,
तुम्हारी यादों में
अंदर से टूट जाता हूँ।
दुखी तुमको देखकर
पागल – सा हो जाता हूँ,
संदेशा तुम्हारा पाकर
उत्सुक हो जाता हूँ।
क्या करू मैं ऐसा हो जाता हूँ।

■■■

ऐ जिंदगी

— **साक्षी अहलावत**
हिंदी (विशेष) तृतीय वर्ष

आज जिंदगी की किताब में
नए पन्नों से शुरूआत
करती हूं,
ऐ जिंदगी कुछ नए रंग
भरती हूं।
सजाती हूं तुम्हे कुछ मनचाहे
रंगो और उम्मीदों से,
अब खुद से ज्यादा तुम पर
ऐतबार करती हूं।
साथ - साथ जब चलते हो तुम
मानो परछाई हो मेरी,
तभी मेरा अक्ष कहकर पुकारा
करती हूं।
मन को जीत लिया है मेरे
"जितेन्द्र " हो तुम,
मैं तुम्ही से प्यार करती हूं।

■■■

मेरा वॉचमेन

— **आदर्श सिंह**
बी.ए. हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष

सारा शहर सो गया है
जगा हूँ मैं और
मेरा वॉचमेन
मैं जगा हूँ
अपने ख्वाबों को सच
करने के लिए
और वो जगा है
हजारों सोये हुए
ख्वाबों को सच में
बदलने के लिए
रोज आता है रातो में दो तीन
बजे और लुभा लेता है
मुझे अपनी अदाओं से
गलियों से गुजरता है
मेरे बजाते हुए सीटी
सर्द रातों में घने कोहरे में
उसका शरीर घुल मिल जाता है और फ़िर
एक बिंदु में बदल कर ओझल हो जाता है।

■■■

रोटी

— **आदर्श सिंह**
बी.ए. हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष

एक चाँद के टुकड़े की
सड़कों पे
नंगे पाँव चलते
तन पर फटे पुराने कपड़े में
उसके शरीर पर पड़ गयी थी
झुर्रियाँ जैसे
पड़ जाती हैं उम्र ढलने पर
उसके हाथ भी सूख गये थे
जैसे सूख जाते हैं पेड़ों के पत्ते
कई दिनों से
भूखा नंगा
घूम रहा सड़कों पे
हाथों में कटोरा लिए
इधर उधर
दौड़ता रहता गाड़ियों के
पीछे
छुप छुप के देखता है
अपने हमदम साथियों को
स्कूल जाते
उसके आखों पे पर गए हैं
काले धब्बे रोते रोते
मैंने देखा है एक चाँद के
टुकड़े को रोटी ढूँढते हुए
कूड़े के ढेर में मैंने देखा है
एक चाँद के टुकड़े को

■■■

प्रवासी साहित्यकार तेजेंदर शर्मा से साक्षात्कार

— सुयश दीक्षित
हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

आपके हिसाब से प्रवासी साहित्य की मूल अवधारणा क्या है ?

सर्वप्रथम कोई भी साहित्यकार ये सोच कर नहीं लिखता है कि वह प्रवासी साहित्य की रचना कर रहा है। ये जो आलोचक हैं ये साहित्य को खाचों में बाँटते है और ऐसा क्यों है इसका जबाब केवल वही दे सकते हैं क्योंकि ये जो खाचों में बाँटता है सिर्फ हिंदी साहित्य ही है। अन्य भाषाई साहित्य उदहारण के लिए अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि साहित्य में जो भी रचनाकार रचना करता है वह चाहे विश्व के किसी भी कोने में बैठा कर रहा हो वह मूल साहित्य ही लिखता है। प्रवासी साहित्य जैसी शब्दावली वहाँ नहीं है। प्रवासी साहित्य में भी घालमेल है। हम उन व्यक्तियों को भी प्रवासी मान लेते है जिन्होंने कभी भारत में प्रवास भी नहीं किया है। उदाहरण के लिए फिजी, सूरीनाम आदि देशों के तृतीय पीढ़ी के लोग जैसे रजीव रमण आदि। अंततः हम प्रवासी साहित्य की अगर एक मूल अवधारणा बांधें तो कह सकते हैं कि जो पहली पीढ़ी का व्यक्ति किसी अन्य देश में रह कर लिख रहा है उसे प्रवासी रचनाकार और उस रचना को प्रवासी साहित्य माना जाना चाहिए। स्वयं मेरे लिए दुविधा है क्योंकि भारत से जाने से पहले मेरे तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके थे, क्या मेरे प्रवासी होने से वे प्रवासी हो गए। अतः मुझे लगता है कि इससे प्रवासी साहित्य की परम्परागत अवधारणा की व्यक्ति के प्रवासी होने से रचना प्रवासी हो जाती है, खंडित होती है।

सामान्य साहित्य जैसे स्त्रीवादी, दलित साहित्य, आदिवासी विमर्श आदि खांचो में बाँटा' हुआ है वैसा कुछ प्रवासी साहित्य में भी है क्या ?

हम प्रवासी साहित्यकार इन सब बातो में बिल्कुल भी रूचि नहीं रखते हैं। हम अच्छी रचना आप तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत हैं।

समाज को साहित्य को इन खांचो में बाँट कर पढना चाहिए।

पढ़नेवाले को सिर्फ साहित्य पढ़ना चाहिए। उसे साहित्य को खांचो में नही बाँटना चाहिए। इससे साहित्य का दायरा सीमित होता है।

आपको सिनेमाई गीतों में बहुत रुचि है इसकी प्रेरणा आपको कहाँ से मिली?

फ़िल्मी गीत मुझे हमेशा से आकर्षित करते थे क्योंकि वह एक विशेष परिस्थिति में लिखे जाते थे, उनके लिए एक विशेष धुन बनती है। इन सभी पहलुओं पर नज़र रख कर गीतकार गीत लिखता है व जिन्दगी का एक पूरा फलसफा हमारे सामने खींच देता है। वर्तमान समय में फ़िल्मी गीतों ने लोक गीतों की जगह ले ली है। उदाहरण के लिए राखी में अब लोग गाते हैं भैया मेरे राखी के बंधन को निभाना। मुझे सिनेमाई गीतकारो ने बहुत प्रभावित किया जिसमें शैलेन्द्र, शकील और साहिर प्रमुख हैं। शकील की गजलें, साहिर की नज्म और शैलेन्द्र के गीत प्रमुख हैं।

क्या सिनेमाई गीत साहित्य के अंग बनने चाहिए?

वरिष्ठ आलोचक ये प्रयास करते रहे हैं कि सिनेमाई गीत साहित्य का अंग न बन पाए परन्तु मेरा मानना है कि ये साहित्य का अंग बनने चाहिए। एक गीत है शैलेन्द्र का --

" किसी की मुस्कुराहटों पर हो निसार, किसी का दर्द ले सको तो लो उधार,

किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार, जीना इसी का नाम है।।"

इस गीत में उन्होंने पूरी जिन्दगी के फलसफे को बाँध दिया है और मेरा मानना है कि ऐसे गीतों को साहित्य में शामिल करना चाहिए। साहिर भी लिखते हैं कि संसार से भागे फिरते हो, भगवान से क्या पाओगे। वही श्रृंगार की बात करें तो मजरूह सुल्तान पुरी कहते हैं कि वादियाँ मेरा दामन रास्ते मेरी बाँहे मेरे बिना तुम कहाँ जाओगे। इसके अलावा कई ऐसे सिनेमाई गीत हैं जिनमें जिन्दगी के फलसफे को लिखा गया है जिन्दगी के दर्द को बयाँ किया गया है। इन गीतों को साहित्य में शामिल किया जाना चाहिए। मेरा तो मानना है की शैलेन्द्र, शकील और साहिर को पाठ्यक्रम में भी लाना चाहिए।

हाल ही में आपको ब्रिटेन के प्रतिष्ठित सम्मान MBE सम्मान से सम्मानित किया गया यह सम्मान पाने वाले आप पहले हिंदी साहित्यकार थे। आपको यह पुरस्कार लेते समय कैसा महसूस हुआ।

जब मुझे ब्रिटेन की महारानी का मेल आया की मुझे इस सम्मान से नवाजा जायेगा तो मुझे लगा कि ऐसा कैसे हुआ क्योंकि हिंदी साहित्य के लिए पहली बार किसी को मिला। मुझे लगा यह पूरे हिंदी जगत का सम्मान है। यह अंग्रेजी के गढ़ में हिंदी सेनानियों का सम्मान है। अतः मैं यह सम्मान अपने हर छोटे बड़े के साथ बाँटता हूँ। पुरस्कार लेते समय मैं स्वयं को हिंदी का राजदूत महसूस कर रहा था। मेरा मत है कि ब्रिटिश राजघराने की यह मुहर इस बात का सबूत है कि भविष्य में हिंदी को आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक पायेगा।

■■■

जब तुमको देखता हूँ

— **हरेन्द्र तंवर**
रसायन विज्ञान ऑनर्स, द्वितीय वर्ष

समय रुक-सा जाता है

सांस थम-सी जाती है

जब तुमको देखता हूँ

कितनी प्यारी हो तुम।

धड़कन सहम-सी जाती है

आँखे भर-सी जाती हैं

जब तुमको देखता हूँ

कितनी मासूम हो तुम

दिल खुश हो जाता है

मन उछलने लगता है

जब तुमको देखता हूँ

कितनी उन्मादक हो तुम।

शरीर रुक-सा जाता है

हृदय उमड़ आता है

जब तुमको देखता हूँ मैं

कितनी परिपक्व हो तुम।

■■■

उन्हीं रास्तों से

— **शंकित कुमार**
एम.ए. हिंदी

कोई कंपन नहीं रूह में

दिन गुजर गया है

रात गुजरती जाती हैं

और हम देख रहे हैं क्षितिज पर डूबते चंद्रमा को

सूर्य का चुंबन लेते हुए

प्रभात की प्रथम किरण के साथ

निकल हम जाएंगे उन्हीं यात्राओं पर

(तुम साथ चलना प्रिय)

जाना है हमें

उन्हीं रास्तों से

जहाँ से हमारे पूर्वजों ने अपनी यात्राएँ पूरी की

(संदेह है मुझे)

■■■

तुम

— **सचिन शुक्ला**
हिंदी विशेष तृतीय वर्ष

सुबह की पहली किरण में
तुम;
फल कुतरते तोते में
तुम;
उछलती-कूदती गिलहरी में
तुम;
हरी कोमल घास में
तुम;
कोयल की कू-कू में
तुम;
बारिश की रिमझिम फुहार में
तुम;
चाँद की शीतलता में
तुम;
यत्र-तत्र-सर्वत्र
तुम।
मेरी प्रार्थना की बुदबुदाहट
तुम;
मेरी प्रतीक्षा का फल
तुम;
मुझे मिले आशीर्वादों का जोड़
तुम;
मेरे गमले में खिला गुलाब
तुम;
मेरे जीवन की सबसे खूबसूरत घटना
तुम;
मेरे प्रेम पत्रों का पता
तुम;
मुझ पर चढ़ा सबसे गहरा रंग
तुम;
मेरी कविता का पहला शब्द
तुम;
तुम्हीं तुम्हीं तुम्हीं तुम्हीं
तुम।
मैं, नुसरत,कव्वाली
और तुम;
मैं,अनुपम,तानपुरा
और तुम;
मैं, शिवम, बकबक
और तुम
मैं,अभिषेक, खाना
और तुम;
मैं, लाखन, दर्शन
और तुम;
मैं, अवनीश,गालियाँ
और तुम;
मैं, मेट्रो, बस
और तुम;
मैं, कविता,शब्द
और तुम।

■■■

काम करेगा जो - नाम करेगा वो

— **गिरजाशंकर कुशवाहा 'कुशराज'**
हिन्दी विशेष, प्रथम वर्ष

जो हमेशा मुझे प्रोत्साहित करती है;
जो मुझमें नया जोश भरती है,
जो मुझसे अपनी हर बात साझा करती है;
उसमें शौर्य है; साहस है और स्वाभिमान,
फिर भी वह करती न कभी अभिमान;
क्यों रहते हो इतने व्यस्त? कहती मुझे वो,
मैं बोलता काम करेगा जो नाम करेगा वो.....

■■■

लम्हें

— **उत्कर्ष सोनी**
बी.एस.सी.(विशेष) जूलोजी द्वितीय वर्ष

लम्हें इंतजार के कटते क्यों नहीं
हम राहें ताक-ताक कर थकते क्यों नहीं
ख्वाहिशों को पाने की है अपनी आरजू
फासले दरमियान ये मिटते क्यों नहीं।
लम्हे इंतजार के कटते क्यों नहीं.....
परवाना शमां के लिए, क्यों इतना बेताब
हर बार जन्म लेता है, होने को उसमें ख़ाक
प्यास कैसी शमा की, जला दीवाने को
ये थमती क्यों नहीं ये रुकती क्यों नहीं
लम्हे इंतजार के कटते क्यों नहीं?.....
शामें इन सुबहों का, कैसे करती इंतजार
कैसे कट जाते हैं, दिन महीने और साल
आशिकी है मेरी, या जादूगरी तेरी
एक पल भी अब तेरे बिन गुजरता क्यों नहीं
लम्हें इंतजार के कटते क्यों नहीं?.....

■■■

अस्तित्व

— **उत्कर्ष सोनी**
बी.एस.सी.(विशेष) जूलोजी द्वितीय वर्ष

कई बार अपने वजूद से सवाल करता हूँ
इन रंगों भरे जहान में मैं क्या अस्तित्व रखता हूँ ?
पवन की पत्तियों से होती फुसफुसाहट सुनना चाहता हूँ
बादलों का सूरज छुपाने का हुनर जानना चाहता हूँ
दिल करता है कोयल से भी मीठा गाने का
पहली बरसात में मयूर के साथ मदमस्त हो जाने का
खुद को हवाओं सा आजाद पाता हूँ
एक ठंडक और सकूँ भरा एहसास बन जाता हूँ
अकेला रहना चाहता हूँ पर तन्हा नहीं
वक्त से अलग हुए एक लम्हा सही
आसमान से टूटता तारा बनाना चाहता हूँ
खुद मिट के सब के गम मिटाना चाहता हूँ
पर सवाल अब भी वजूद से ही करता हूँ
आखिर इन रंगों भरे जहान में मैं क्या अस्तित्व रखता हूँ

■■■

अधूरी चांदनी

— **उत्कर्ष सोनी**
बी.एस.सी.(विशेष) जूलोजी द्वितीय वर्ष

कुछ शामें आज भी तन्हा है
कुछ राते आज भी अकेली है
चाँद आज भी उसी शिद्दत से चमक रहा है
बस तेरे बिना चांदनी अधूरी है
झूठ कहता हूँ, दिल मेरा आज भी रोता है
चुप रहता हूँ, गम मुझे आज भी होता है
सह लेता हूँ तेरी रुसवाई का सोच के
थोड़ा ही सही पर दर्द मुझे आज भी होता है
आज राहे अकेली हैं तो क्या, चलना तो कल भी पड़ता
हमसफ़र नहीं तो क्या, संभलना तो कल भी पड़ता
मेरे आजाद ख्याल मुझे अब भी प्यारे हैं
उसे जिताने के लिए हम सब कुछ हारे हैं
क्या हुआ जो मेरा चाँद कही खो गया
क्या हुआ जो वह मुझसे जुदा हो गया?
आसमान में और भी कई सितारे है |

■■■

बचपन

— **हार्दिक अग्रवाल**
स्नातक भौतिक विज्ञान द्वितीय वर्ष

कहाँ गए वो दिन जब बच्चे थे हम ,
कहाँ गए वो दिन जब सच्चे थे हम,
जब शिक्षा के लिए कष्ट उठाया,
कठिन परिस्थितियों ने चारों ओर घेरा बनाया,
भारी बस्ते ने कंधो को झुकाया,
माँ-पापा की उम्मीदों पर जब खड़ा होने का मन बनाया,
अनेक जिम्मेदारियों ने हमे रुलाया,
तब हताश मन ने यही गया,
कहाँ गया वो बचपन हमारा,
कहाँ गया वो बचपन हमारा,
न ऊँच-नीच की थी फ़िक्र, न जात-पात की थी फ़िक्र,
जैसे जैसे बढ़ती गयी उम्र, दिखने लगा कुल का असर,
न जाने कैसा है ये सफर, किस बयार का है ये असर,
जो मजहबो में अंतर दिखलाये,
इंसान को भेदभाव सिखलाये,
हे परमात्मा ! तू कोई जादू ऐसा दिखला दे,
अपने इस बच्चे को फिर से बच्चा बना दे |

■■■

सोशल मीडिया और मानव

— **हार्दिक अग्रवाल**
स्नातक भौतिक विज्ञान द्वितीय वर्ष

इंटरनेट का बढ़ता मायाजाल,
मनुज भूल रहा घर- परिवार,
फेसबुक, व्हाट्सप्प कर रहा धमाल,
लोग कर रहे अर्थदंड स्वीकार,
नेट रिचार्ज के नित नए झिकाल,
सिमट रहा पारिवारिक सरोकार,
दबोचे हमें बन मकड़ी जाल,
कैंसर जैसा इसका संसार,
कोई उपाय करो तत्काल,
नष्ट हो रहे है संस्कार |

■■■

मैं ढ़कूँ तो ढकूँ कहाँ तक

— **पूजा आर्या**
हिंदी विशेष तृतीय वर्ष

मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक
कभी लोगो की बातों में
तो कभी समाज के इन रिवाजो में
कभी चित्रकार की कृतियों में
तो कभी लेखक की कहानियो में
मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक.....
कभी शायर की शायरियों में
तो कभी द्रौपदी की साड़ी में
कभी राह चलती गाड़ियों में
तो कभी आखों की हैवानियो में
मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक.....
कभी बारिश की इन बूंदों में
कभी कड़कड़ाती धूप में
तो कभी रंगों की बहार में
कभी छल किये प्रहार में
मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक.....
कभी वस्त्र के साथ
सजाकर तो देखो
तो भी इतनी ही सुन्दर नज़र आउंगी
तब भी इतना ही अपने आप को
मोहक बनाऊँगी
मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक.....
क्यों देते है ये सज्जा
क्या मिलता है
क्या आता है
तुमको मजा
मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक.....
मई भी इज्जत की एक मूरत हूँ
दिल से स्वीकारो
मैं ढकूँ तो ढकूँ कहाँ तक.....
शायद इस प्रयत्न के साथ भी
वस्त्र के साथ में अधूरी नज़र आऊँगी
और उम्रभर प्रश्न बनकर '
पूछती रह जाउंगी
मैं ढकू तो ढकू कहाँ तक.....

■■■

मेरी प्यारी दीदी

— **सत्यम**
संस्कृत विशेष तृतीय वर्ष

मेरे हर दुःख को समा ले गयी अपने जहन में
यह ताकत है बुआ मेरी बहन में
मेरी गलतियाँ कर ले दफ़न जो खुद में
यह सब्रिनम ख़ोज है मेरी बहन में
जब भी खुद को अकेला पता हूँ
दीदी तुमको अपने साथ पता हूँ
ज़माने की भीड़ में जब खो जाता हूँ
तुमको याद कर घर लौट आता हूँ
न जाने कब हो जाए तुम्हारी विदाई
कैसे बर्दाश्त करूँगा वो जुदाई
समाज ने बना दिया इसे रस्म-ए-खुदाई
इस बात से है मेरी उस रब से लड़ाई
तू जहाँ भी रहे खुश रहे
खुशबू की तरह महकती रहे
बाबुल का प्यार तुझको मिलता रहे
क्या फर्क पड़ता है हमारा साथ रहे न रहे
एक भाई की बस यही है आराधना
पूरी हो बहन की हर साधना
उपर वाले से बस इतना है कहना
सदा खुश रहे मेरी प्यारी बहना

■■■

मेरे जज्बात

— **सत्यम**
संस्कृत विशेष तृतीय वर्ष

अपनी बीती जिंदगी को जब हम याद करते हैं
खुदा कसम उसमें तुम्हारा ही दीदार करते हैं
तुम्हारी याद में हम मंदमंद मुस्काते हैं
फिर भी पता नहीं क्यों आँखों से आंसू झलक आते हैं
तुम्हारी याद की कशमकश ने हमें लड़ना सिखा दिया
आरजू मिन्नत और दुआ करना भी सिखा दिया
उदासी भरी निगाहों से लबों को हँसना सिखा दिया
बुझी हुई चिराग से दिये को जलाना सिखा दिया
गवाह है हर मंदिर मेरी वफ़ा की
हर जलती हुई दीप ने तेरी दुआ की
हर बजते घंटे ने बस तेरी मन्त्रणा की
बंद आँखों ने हमारे मिलन की कल्पना की
फिर भी तुम रूठी रही
अपनी नजरों में उठी रही
मिलन को अभिशाप समाज पछताती रही
अपने ही धुन में गाती रही
वादा है ये मेरा तुमसे
दूर न होगी तुम मुझसे
बस एक आभास चाहिए तुमसे
कि कभी खुद को अलग न समझना मुझसे

■■■

फुटपाथ

— **सुयश दीक्षित**
हिंदी विशेष तृतीय वर्ष

कुछ अनजान लोगो के साथ में
एक रात गुजारी फुटपाथ पर
उमंग और सोच के इतर सब खो गया
नए शहर में आँसू भी बह कर खो गया
बस एक वासन में तन गाँधी था
तेजस चिन्ताओं से मन भारी था
भरी अब हर पहर लग रहा था
जग सो रहा बस मैं जग रहा था
तन को रख धरा माँ के हाथों में
एक रात गुजारी फुटपाथ पर
थके सर को धरा माँ ने सहलाया
पता नींद का नए शहर में बतलाया
फिर मैं पंहुचा स्वप्न जगत के बागों में
झूमा मैं अपने गाँवों के ममतामयी रागों में
कभी चटाई कभी वो खटिया
बचपन से काटी मौजों से रतिया
कभी कब ही सोया मैं पेड़ों की साख में
पर एक रात गुजारी आज फुटपाथ में
भोर भई तो अंखिया खोली
तो एकाएक जिव्हा बोली
नहीं मैं अकेला , भीड़ थी मेरे साथ में
एक रात गुजारी मैंने फुटपाथ में

■■■

हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत रचनाएँ

विश्वबंधुत्व

— आदित्य रंजन
हिंदी (विशेष), द्वितीय वर्ष, हंसराज कॉलेज

मान लीजिए दो बाग हैं। बिल्कुल आस-पास एक दूसरे से सटे हुए। क्या हम उनके बीच सिर्फ एक मेड़ बनाकर उन्हें दो भागों में बांट भर देने से उनके बीच बहने वाली हवाओं को रोक सकते हैं? क्या सूर्य से मिलने वाली रोशनी को रोक सकते हैं? क्या जड़ों द्वारा सोखी जाने वाले जल को बांट सकते हैं? शायद आपका उत्तर होगा नहीं। चाहें जो कर लें, कोई दीवार खड़ी कर लें आप उन्हें एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित होने से नहीं रोक सकते।

यह उदाहरण हम इंसानों के ऊपर भी उतना ही लागू होता है। उन्हें भी हम चंद रेखाओं द्वारा अलग-अलग नहीं कर सकते। अगर कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है तो ये दिखावे की रेखाएं किस काम की। दुनिया का कोई देश नहीं है जो दैनिक उपयोग की सभी वस्तुओं का उत्पादन करता हो। जब भारत गेहूं के लिए अमरीका पर, प्याज के लिए पाकिस्तान पर आश्रित है। पूरा विश्व अभ्रक के लिए भारत पर, चीनी के लिए ब्राजील और भारत पर, तेल के लिए खाड़ी के देशों पर निर्भर है तो फिर रेखाओं का यह ढोंग क्यों रचाया जा रहा?

विवेकानंद द्वारा १८९३ ई. में अमरीका में दिए भाषण का सम्बोधन "मेरे अमेरिकावासी भाइयों एवं बहनों" केवल एक सम्बोधन मात्र नहीं है बल्कि वहाँ उपस्थित विश्व भर के लोगों के सम्मुख " वसुधैव कुटुम्बकम" के विचार को जीवंत करने वाला सन्देश था। यह मानवता का संदेश था जो पूरे विश्व के लोगों को एक ही अंश होने की व्याख्या करता है। विवेकानंद कहते हैं , "हम सभी समान हैं, इसीलिए हमें एक सम्प्रदाय के रूप में संगठित हो जाना चाहिए। परन्तु इस क्रम में हमे समता विरोधी होने से बचना है।"

विश्वबंधुत्व की आवश्यकता को हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं। सोचिए एक आदमी सिर्फ आम के पेड़ों से पूरा बाग भर दे तो आप उसे किस रूप में देखेंगे, एकदम नीरस। अगर वहीं कुछ आम, अमरूद और अन्य विभिन्न आकार,रंग,रूप के पौधे और साथ में उन पर कुछ लताएं, फूल भी पसरे हों तो शायद उसे आप ज्यादा महत्व देंगे। हमने देखा है बड़े पेड़ छोटे पेड़ों को अपनी तनाएँ, उनका विस्तार करने के लिए देते हैं। यही अगर हम इन्सानों के साथ हो तो कितना अच्छा हो। किसी देश को अनाज की तंगी से नहीं जूझना पड़े और न ही किसी देश के आक्रमण से। तब एक ग्राम की संकल्पना साकार हो जाएगी। उपनिषदों के किसी श्लोक में भी यह वर्णित है कि 'इकट्ठे चलें, एक जैसे बोलें और सबके मन एक से हो जावें।'

सोचिए कैसा होगा अगर सारी दुनिया इन रेखाओं के मोह को छोड़ दे। तब न कोई हिटलर यहूदियों को काटेगा, न ही अमरीका हिरोशिमा पर एटम बम गिरायेगा। न ही इराक़, पाकिस्तान आदि अनेक देशों में आतंकवाद फैलाएंगे। तब साइबेरिया का बर्फ, अफ्रीका का रेगिस्तान, खाड़ी के तेल उत्पादक देश, ब्राजील के वन, भारत की मनोहारी जलवायु सब कुछ सबका होगा। इतिहास गवाह है कि जब-जब कोई सिकन्दर दुनिया जीतने निकला है, कोई हिटलर पूरी दुनिया का तानाशाह बनने निकला है तो मारी गयी है केवल 'मानवता'। उस सिकन्दर, हिटलर ने चंद रेखाओं के अंदर सिमटे क्षेत्र के लिए इंसानों को न सिर्फ मारा, बल्कि पैदा किया है एक भय। उन चंद रेखाओं के प्रति इतना भय जिससे जन्म लेती है ईर्ष्या। क्या रेडक्लिफ रेखा, मैकमोहन रेखा के उस पार दूसरा सूर्य है, उधर दूसरा चन्द्रमा है। क्या उस पार का इंसान सिर्फ इस लिए भारत आदि देशों से नफरत करेगा कि उसका जन्म बस एक पतली लकीर के उस पार हुआ है। हम चंद रेखाओं को इतना शक्तिशाली बना रहे हैं। हमें बहुत कुछ खत्म करना है इस दुनिया से, तो फिर साथ मिलकर खत्म करें न, क्यों हम रेखाओं के रूप में एक नया शत्रु पैदा कर रहे हैं। हम इनके लिए लड़कर अपनी शक्ति व्यर्थ कर रहे हैं। शेष चुनौतियों को खत्म करने के लिए हमें साथ आना ही पड़ेगा। बचपन में पढ़ी वो लकड़ी के गट्ठरों वाली कहानी इस बात को बिल्कुल साफ कर देती है कि हम उन गट्ठर रूपी अनेक चुनौतियों को साथ मिलकर ही तोड़ सकते हैं।

विश्वबंधुत्व की विचारधारा कोई आज का विचार नहीं है बल्कि प्राचीन मनीषियों ने ही इसकी व्याख्या की है। वसुधैव कुटुम्बकम" के

सूत्र द्वारा भारतीय मनीषियों ने जिस उदार मानवतावाद का सूत्रपात किया था यह पारस्परिक सद्भाव पर टिका है। यह अवधारणा 'स्व' और 'पर' के बीच की खाई को पाटने का कार्य करती है।

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।"

प्रत्येक देश के विचारक इसके पक्ष में खड़े होते हैं। स्वामी विवेकानंद के बाद महात्मा गांधी ने इस संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। महात्मा गांधी लिखते हैं कि,"भविष्य में सारी दुनिया में शांति, सुरक्षा एवं प्रगतिशील विश्व के निर्माण हेतु स्वतंत्र राष्ट्रों के संघ की अत्यंत आवश्यकता है। इसके अलावा आधुनिक विश्व की समस्याओं के समाधान हेतु कोई अन्य मार्ग नहीं है।"

वर्तमान दौर की बात करें तो कई देश एवं संगठन विश्वबन्धुत्व की संकल्पना को साकार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। बौद्ध धर्मगुरु दलाई लामा का कार्य इस संदर्भ में अत्यंत सराहनीय है। कुछ उदाहरणों को देखें तो पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी का एक होना, सीरिया के पीड़ितों को विश्व भर के देशों द्वारा शरण देना, उत्तरी एवं दक्षिणी कोरिया का शीतकालीन ओलम्पिक में साथ मिलकर खेलना विश्वबंधुत्व की भावना के जीवंत होने का प्रमाण हैं। अगर हाल ही में देखें तो बांग्लादेश जो कि आर्थिक रूप से काफी कमजोर है उसने म्यांमार से आये रोहिंग्या शरणार्थियों को शरण दी, उनके लिए अपना एक द्वीप खाली करा उन्हें वहां बसाया जो कि यह प्रदर्शित करता है कि विश्वबन्धुत्व का भाव अभी जीवित है। यह सभी के लिए एक सन्देश है कि हमें मानवता को जीवित रखने के लिए स्वयं के अलावा परहित को भी ध्यान में रखना होगा। इस क्षेत्र में सभी कार्यशील हैं। सबके अंदर इस भावना का संचार हो, सभी प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु इस क्षेत्र में और कार्य अपेक्षित है।

■■■

विश्वास है तुम आओगी

— **शम्भू अमलवासी**
हिंदी प्रतिष्ठा तृतीय वर्ष,सत्यवती महाविद्यालय

बस की खिड़की से बहार झांकते हुए
कई बार चाहा मैंने कि इस समय के साथ
चल रही रफ़्तार को कुछ समय के लिए रोक लूँ बस! कुछ समय के लिए।
मैं इन भागते पेड़ों और इन चटानो को ,एक बार फिर छूना चाहता हूँ।
मैं चाहूँ तो इन पेड़ो की रफ़्तार को रोककर
उनको छूकर चट्टान पर भागकर चढ़ सकता हूँ
मैं उस चट्टान की ऊँची छोटी पर जाकर आकाश में देखकर,
तुम्हें आवाज़ लगा सकता हूँ..कि तुम एक बार फिर आओ
और छुओ मेरे साथ इन हरे -हरे पेड़ों को ,देखो मेरे साथ तुम इस हरयाली को , जो अब
पहले जैसी नही है ,जब तुम मेरे साथ थी।
अब उस चट्टान पर किसी हमारे जैसे लोगों ने
हमी पर अपना- अपना नाम गोद दिया है
और मिटा दिया है हम दोनों के नाम को।
पर मैं अपने आप से ये वादा करता रहता हूँ
कि तुम हरे-हरे पेड़ों को फिर से छूओगी और
फिर वो पहले जैसे हरे भरे हो जायेंगे....तुम
आओगी उसी चट्टान के पास...जहाँ हमारा नाम
अब अपना अस्तित्व खो चुका है... कि उस खो
चुके अस्तित्व को तुम एक बार फिर
उस चट्टान पर उकेर के जाओगी
" विश्वास है तुम,आओगी "

■■■

प्रेरणा

— **आयुष पाण्डेय**
बी.ए. हिंदी विशेष प्रथम वर्ष, हंसराज कॉलेज

बिना प्रेरणा के लिखूँ गीत कैसे
बिना प्रेरणा क्या कलम को उठाऊँ
जो जीवन में आओ मधुर प्रेरणा तुम
तो फिर कल्पना में मैं डुबकी लगाऊँ।
सूरज की किरणों सा बनकर तुम आना
मुझे करना पागल, खुलकर रुलाना
पतझड़ का मुझको एहसास देकर
जीवन मे उज्ज्वल मधुमास लाना।
मरुस्थल हुए दिल पे खुलकर बरसना
कल्पना को तुम एक आयाम देना
बेताबी, बेचैनी, बेफिक्री हो जिसमें
गीतों को ऐसी एक पहचान देना।
मेरी प्रेरणा तुम कुछ ऐसे आना
कि हद से भी ज्यादा लगे विश्व प्यारा
मेरी कल्पना को यू विस्तृत बनाना
की छोटा लगे फिर ये आकाश सारा।
मेरी प्रेरणा मुझको करना यूँ प्रेरित
कि फिर जीवन में बस हो लिखना
ज़रूरी
सातों समंदर ये बन जाये स्याही
मगर फिर भी पड़ जाए स्याही अधूरी।
मासूम मेरे हृदय को यूँ छूना
कि फिर धड़कनें भी एक गीत गाए
हर एक कल्पना एक प्रबल वेदना हो
हर एक अक्षर आंसू बहाये।
मेरी प्रेरणा मुझमें कुछ न बचा हो
मेरी स्थिति को कुछ ऐसा बनाना
दिनभर का मेरा जीवन यही हो
कुछ देर रोना, कुछ देर गाना।
यथार्थ की व्यर्थता मुझको दिखाकर
कल्पनाएँ सारी मुझे बेच देना
मेरी लेखनी की बन कर वजह तुम
मेरी लेखनी को वजह एक देना।

■■■

स्त्री शक्ति

— **हर्षित राज श्रीवास्तव**
बी.ए.(विशेष) हिंदी,तृतीय वर्ष
किरोड़ीमल महाविद्यालय

स्त्री शक्ति के प्रसंग में एक शेर को जोड़ कर देखा जा सकता है कि -

'तेरे माथे पे ये आँचल तो बहुत खूब है
पर इस आँचल से तू परचम बना लेती तो अच्छा था'

स्त्री क्या एक सामाजिक पहचान है या लिंग आधारित व्यवस्था। वास्तविकता में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' जैसी आदर्शवादी पंक्ति सुनने में जितनी मधुर है उसके पीछे की वास्तविकता उतने ही भयावह है। आदिकाल से ही पुरुष समाज ने उसे दुर्गा माँ, सरस्वती माँ बनाकर उसे संसाधनविहीन कर दिया है, या तो उसे सीधे जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया। उसे सदैव सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया।

स्त्री शक्ति की भावना की अभिव्यक्ति इस तथ्य से पुष्ट होती है कि इस सृष्टि के निर्माण में नारी भावना ही प्रधान रही है। पृथ्वी, गाय, माँ आदि नारी के ही प्रतिरूप हैं। यह हमारे समाज की विसंगति ही है कि उसने कभी इसे एक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित ही नहीं होने दिया।

स्त्री शक्ति की सबसे प्रमुख बाधक पितृसत्तात्मक सोच तथा इस मानसिकता से उपजी वह व्यवस्था है जो स्त्री को दोयम दर्जा प्रदान करती है। समाज की यह विसंगति रही है कि उसने स्त्री को मनुष्य माना ही नहीं, हमेशा एक वस्तु के रूप में उसकी अस्मिता का दोहन करता रहा। स्त्री शक्ति की प्रारंभिक लड़ाई ही उसे एक मनुष्य मानने की है।

Simon the Bua कहती है 'one is not born, but rather become a women' अर्थात स्त्री पैदा नहीं होती बना दी जाती है। इसका आशय यह हुआ कि संस्थागत रूप से एक स्त्री का निर्माण समाज द्वारा कर दिया जाता है। बचपन से ही स्त्री के लिए गुड़िया, फूल आदि खिलौने दिलाये जाते हैं और लड़के को बन्दूक जैसे खिलौने। बचपन में हमेशा एक संस्कृत अनुवाद करने को मिलता है कि 'राम खेलता है और सीता खाना पकाती है'। आखिर क्यों राम ही खेलता है और सीता खाता पकाती है। वास्तविकता में ऐसी बहुत सारी विडम्बनाएँ हैं जो स्त्री को संस्थागत रूप से पुरुषों के दोयम दर्जा प्रदान करती है।

मैत्रेयी पुष्पा जी दलितों और स्त्रियों के मध्य अंतर करते हुए स्पष्ट करती हुए कहती है कि "स्त्रियों और दलितों के शोषण में बस इतना ही अंतर है कि दलित तो अपने शोषण से परिचित होता है परन्तु स्त्रियाँ अपने शोषण से अनिभिज्ञ रहती है। वे अपने शोषण को अपना दायित्व समझकर उसका निर्वहन करती है।"

अर्थात् दलितों से भी वीभत्स स्थिति स्त्रियों की है। स्त्री शक्ति की परिकल्पना तब तक साकार रूप नहीं ले सकती जब तक वे अपने शोषण से परिचित नहीं होगी।

स्त्री शक्ति की संकल्पना उनके आर्थिक सशक्तिकरण के बिना संभव नहीं है। पुरापाषाण काल से ही संसाधनों पर एकाधिकार पुरुष सत्ता का ही रहा है।

सबसे महत्वपूर्ण और आश्चर्यजनक यह है कि जिस पितृसत्ता ने उनका शोषण कर उनको दोयम दर्जा प्रदान किया है वे उस पितृसत्ता की ही परिपोषक हैं। एक बहन या माँ के रूप में वे उसी पितृसत्ता को पोषित करती रहती है। यदि वे अपनी स्वचेतना की भावना को पहचान लेती है तो वे निश्चित तौर पर सत्ता का विकेंद्रीकरण करने में सक्षम होंगी और इस विकेंद्रीकरण से जो उर्जा निकलेगी वह स्त्री को सशक्त एवं समृद्ध करने में सहायक होगी।

हिंदी साहित्य में ध्रुवस्वामिनी भी अपने समाज में प्रमुख तीन सत्ताओं से लड़ रही थी। वह पितृसत्ता, राजसत्ता व धर्मसत्ता से संघर्ष करती है। भारतीय समाज में भी दलित स्त्रियाँ इन्हीं त्रयी शक्तियों से लड़ रही है। जयशंकर प्रसाद लिखते हैं –

पुरुषत्व के मोह में भूल गये कुछ सत्ता है नारी की
सहचर सम्बन्ध बने, अधिकार व अधिकारी की।"

तभी वास्तविकता में सार्थक सशक्तिकरण संभव हो पायेगा व इसके परिणाम धरातल पर मूर्त होते हुए दिखेंगे।
अंततः हमें बस इतना समझना होगा कि स्त्री शक्ति उसके स्वयं के अटूट संकल्प और इच्छाशक्ति पर निर्भर है। स्त्री सृष्टि का आधार है। 'रथ का दूसरा पहिया है' कविता में कवि ने लिखा है –

"एक ओर नारी को हम श्रद्धा के योग्य बताते हैं
और भ्रूण कन्या को गर्भ में दफनाते हैं]
यदि कन्या भ्रूण शिशुओं की यूं ही घटती जायेगी,
फिर शादी जैसे बंधन की याद मात्र रह जाएगी
फिर कैसे सपने आयेंगे मधुर मिलन अहसासों के
कैसे कोई गीत लिखेगा, प्यार भरे अहसासों के
दुनिया सारी सूनी होगी,सृष्टी चक्र रुक जाएगा |
कृष्ण अकेले घूमेंगे,राधा से कौन मिलाएगा"

■■■

जिजीविषा

— **लक्ष्य आनंद**
बी.टेक (तृतीय वर्ष)
दिल्ली तकनीकी विश्वविद्यालय

हर जन्म में
शराब की तासीर
इसके पहले घूँट सी कड़वी
और आखिरी सी बेशर्म नहीं होती
बल्कि, इन दोनों के बीच के
वो सभी घूँट भी गिने जाने चाहिए
उन चीज़ों की फेहरिस्त में
जो मेरे बाद, मेरे वारिस को मिलेंगी!
उनमें सबसे पहले, नामजद किए जाएँ
101 घूँट, मेरी प्रेयसी के नाम
मेरी पत्नी के अलावा
उसके बाद मेरी साड़ी बौद्धिकता
नत्थी की जाए, बाकी के घूंटों के साथ!
उसके आगे
एक कॉलम बना कर लिखा जाये
कि बुरा था।
गुलाम था अपनेपन का
यूं तो जीवन भर करता रहा कविता
खुदमुख्तारी को खुदा कहने की
लेकिन, लेकिन मेरे वारिस मैं उतना भी बुरा नहीं
जितना मेरे मंदिर का पुजारी कहता है
वो कहता है कि
लक्ष्य हो सकता था बिल गेट्स
सी. वी. रमण, और यदि रोज काली मंदिर जाता
तो शायद विवेकानन्द भी
खैर,ये बातें ज़रा बढ़ा चढ़ाकर लिखना मेरे वारिस !
ताकि सर न झुके मुझ जैसे बचे फकीरों का
हाँ, तो शराब बाले कॉलम में, सीधे सीधे लिख देना
कि जिंदगी को गाली देते-देते पीने बैठता था
और आसमान को गाली देते-देते
जमीन पर ढप्प! ढेर हो जाता था
रटा दिए थे उसने अपने परिजनों तक को
इंजीनियरिंग की तैयारी करने वाला
एक छुटकऊ-सा छात्र भी यही कहता था
कि खुद उसके शिक्षक तक उसे गरियाते हैं
वे कहते हैं कि
लक्ष्य बुद्ध होने की कोशिश में
जैन दर्शन के स्वादवाद से आगे नहीं बढ़ा
वो रजनीश के किसी दुरूह उदाहरण-सा था
आदर्शों को ओढकर शराब पीता था
और जब रजनीश उसे खुद से दूर जाते दिखते थे
तब वो ओढ़ लेता था
अपने गांधीवादी पिता के विरोध का पसंदीदा कम्बल
और वही कम्बल, उसे उसकी भोली माँ के आँचल का
आकाश भी देता था!
एक आखिरी बात मेरे वारिस
वो भैरो मंदिर का पुजारी, मेरा विरोधी कभी नहीं रहा
पिताजी का विरोधी है!
और इसी आधार पर
आगे चलकर
तुम्हारा भी रहूँगा
सुनो
तुम चले जाना बड़े मंदिर के पुरोहित के पास!
और हाँ मेरे वारिस, इसमें किसी और का नाम मत लिखना
मेरे अलावा!
मेरे पिता का भी नहीं
मेरी माँ का भी नहीं
अपनी माँ का भी नहीं !
मेरे वारिस!
मैं तुमसे वो सब कहना चाहता हूँ
जो मरने से पहले
'सुकरात' ने प्लेटो से कहा था
और वो सब भी
जो जहर पीने के ठीक बाद
और मरने के ठीक पहले
सोचा था 'सुकरात' ने
मगर तब तक
सुकरात की जीभ
तालु से लिपटकर रोने लगी थी
और प्लेटो भी!

■■■

iza Noor
A. (H) History
Year

Isha Das
B. A. (H) English
II Year

Anushka Jhalani
B. A. Programme
I Year

Anushka Jhalani
B. A. Programme
I Year

संस्कृतम्

संपादकमंडलम्

- डॉ. अवनीशकुमारः
- श्री अजीतकुमारः

छात्रसंपादकौ

- राजीवरंजनयादवः
- राहुलकुमारः

विषयानुक्रमणिका

1. विद्यार्थीजीवने गीतायाः महत्वम् – **आशुतोषः** | **36**
2. संस्कृतिःसंस्कृताश्रया – **कृष्णा** | **37**
3. योगः – **कुमारी रितिका** |**38**
4. भ्रष्टाचारस्य उन्मूलनम् – **तारकेश्वरः झा** | **39**
5. संस्कृतभाषाया महत्त्वम् – **अञ्जली** | **40**
6. संस्कृतवाङ्मये शासनस्य स्थितिः
   अधिकाराः कर्त्तव्यानि च – **धनञ्जयः कुमारः** | **41**
7. वेदानां महत्त्वम् – **स्वस्तिः** | **42**
8. संस्कृतभाषायाः गौरवम् – **रविना** | **43**
9. संस्कृतस्य वैशिष्ट्यम् – **जयकृष्णः** | **43**
10. योगः – **निशांतः कुमारः** | **44**
11. अनुशासनम् – **रूम्पा कयालः** | **44**
12. सदाचारः – **स्मृतिः** | **44**
13. संस्कृतसाहित्ये रसानां महत्त्वम् – **पूनमः** | **45**
14. सर्वेषां कृते – **रितुः लक्ष्मीश्च** | **46**
15. गीतम् – ''कः त्वां प्रेष्यति'' – **अनुवादकः राहुलकुमारः** | **46**
16. व्यर्थः मूर्खोपदेशः – **रश्मिः यादवः** | **46**
17. मूर्खमण्डलम् – **रामपुकारः** | **47**
18. जीवनम् संघर्षसरः – **संदीपः जायसवालः** | **47**
19. होलिकोत्सवः – **सत्यम् कुमारः** | **47**

विद्यार्थीजीवने गीतायाः महत्वम्

— **आशुतोषः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

गीता न केवलं भारतस्य अपितुं सम्पूर्णविश्वस्य कृतेऽस्ति यतोहि प्रत्येकं युगदेशपरिवेशसमाजानां समक्षं समस्या भवत्येव। केचन तासां समस्यानां समक्षं पराजिताः भवन्ति, परन्तु अधिकांशतः ताभ्यः समस्याभ्यः तरितुं प्रयासं कुर्वन्ति। न जाने किमर्थं जनाः कर्मविषये तादृशचिन्तिताः न भवन्ति यादृशाः कर्मफले भवन्ति। केचन उद्विग्नतायाः नियंत्रणं कुर्वन् केवलं कर्मकर्त्तुं दृढ़संकल्पं कुर्वन्ति।

एकस्य छात्रस्य कृते अपि गीतायाः महत्वं वर्तते। आधुनिकशिक्षाप्रणाल्यां छात्रैः प्राप्ताङ्काः एव तस्य प्रतिभायाः योग्यतायाश्च निर्णायकाः अतः स्वाभाविकम् अस्ति यत् परीक्षायां, विशेषतः बोर्डपरीक्षायां ये प्रथमवारं भागं स्वीकुर्वन्ति तेषां स्थितिः अर्जुनइव भवति। प्रथमवारं स्वविद्यालयात् दूरं, पूर्णतः भिन्ने पर्यावरणे, गहनसुरक्षायां एकस्मिन् निश्चितकाले अधिकतमम् अंकान् प्राप्तुं युद्धक्षेत्रे आगतस्य बालस्य स्थितिम् अवगमने क्लेशः न। बहवः नूतनप्रश्नाः भवन्ति तेषु प्रश्नेषु ज्ञातप्रश्नाः अधिकाः भवन्ति परन्तु स द्वन्द्वे भवति यत् कस्य उत्तरं पूर्वं कथञ्च दातव्यम्। स्वस्य स्मरणशक्तौ संदेहं करोति। सः क्लेशार्हः खिन्नः भवति यतोहि सः न जानाति यत् महात्मागांधिना उक्तं यत् ''यदा शंकाः मयि अत्याधिकाः भवन्ति, अहं गीतां पश्यामि।''

प्रतियोगितायाः परीक्षायाः उद्विग्नताविषयो सर्वे जानन्ति एव। सर्वे स्वजीवने एतस्याः अनुभवं अवश्यमेव कुर्वन्ति। तां उद्विग्नतां तावत् पर्यन्तं सामान्या न वक्तुं शक्नुमः यावद्पर्यन्तं तस्याः स्तरः सामान्यः न भवति।

असामान्याः उद्विग्नतायाः अर्थः अस्ति। यत् अस्माकं बुद्धिः एव शत्रुः जाता। एतामेव सामान्यतां कर्त्तुं कलां गीतायाः एव प्राप्तुं शक्नुमः तस्याः शिक्षा लोकव्यवहारस्य ज्ञानं प्रेरणां च ददाति। अद्यत्वे प्रतियोगीजीवने एकः प्रेरकः भवेत् यः अस्मान् प्रबन्धस्य तनावनियन्त्रणस्य च साधनानि ज्ञापयेत्। श्रीकृष्णः एकः महान् प्रेरकः अथ च तस्मात् मुखात् प्रवाहितगीतायाः ज्ञानं अज्ञानान्धकारस्य नाशाय एव अस्ति। गीता अस्मान् विकासशीलान् भवितुं शिक्षयति। परिस्थितिः प्रमाणं यत् 'टैलीपैथी', 'द्विव्यदृष्टिः' इत्यपि प्राप्तुं शक्नुमः यदि वयं कर्त्तव्यानुरागिनः स्मः। एतदेव एकेन विद्यार्थिना ज्ञेयं यत् एवं विकसितं भूत्वा एव पूर्वं वयं मूर्खत्वं विहितं कुर्मः तदा स्वानुभवेन तं तीर्त्वा बुद्धिमतां प्राप्नुमः। कृष्णः न कोऽपि अन्यः अपितु अस्माकमेव चेतनास्वरूपः अथ च शंकाभिः, द्वन्द्वैः ग्रथितं मनः अर्जुनः।

ये प्रश्नाः तदा आसन् इदानीमपि ते एव। अस्माकं प्रत्येकं प्रश्नामुत्तरमपि अस्मदीयविवेकस्य समीपे वर्तन्ते परन्तु सः अतः उत्तरं न प्राप्तुं शक्नुमः। गीता विवेकवान् करोति यस्य विवेकः जागृतः भवति तस्य जीवनं सफलतायाः प्रेरणायाश्च गीतमिव भवति।

श्रीमद्भगवद्गीता अस्मान् शिक्षयति यत् पलायनं न कर्त्तव्यम् अपितु रचनात्मकः भवितव्यम्। परिणामस्य उद्विग्नतां त्यक्तवा यः स्वकर्त्तव्यमार्गे निरन्तरं चलति स एव आनन्दं प्राप्नोति। तकनीकिविकासम् एव स्वविकासं ज्ञात्वा वयं स्वान्तर्विकासं विस्मृवन्तः।

एतस्मात् कारणादेव एकस्य युवाछात्रस्य समक्षं कामक्रोधलोभादयः भावाः तु सन्ति एव व्यसनं, कामत्वं, वैदशिकशक्तेः भ्रमजालः, देशद्रोहरूपी विचाराः इत्यादयः अनेके शत्रवः सप्रलोभनेन साकर्षणेन च विद्यमानाः सन्ति।

अद्यापि एकः अपरिपक्वः युवा अर्जुनः इव तैः शत्रुभिः निजमोहात् युद्धं कर्त्तुं सहजतया प्रस्थितः न अस्ति। एतादृशयूनां रक्षणे गीता एव समर्था वर्तते। छात्रेण ज्ञातव्यं यत् सः शेषं सर्वं परित्यज्य केवलं विवेकप्रयासयोः शरणे वसेत्। एतेनैव अज्ञानताया असफलतायाश्च मुक्तिं प्राप्यते।

■■■

संस्कृतिःसंस्कृताश्रया

– **कृष्णा**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

सर्वप्रथमम् प्रश्नोऽयम् उत्पद्यते यत् का नाम संस्कृतिः इति? तर्हि परिष्करणं, संस्करणं, दुरितं अपोहनं दुर्भावदहनं च संस्कृतिरिति। संस्कृतिर्हि जीवनोन्नतिसाधिनी, सद्गुणग्राहिणी सत्यपथविहारिणी ज्ञानज्योतिः प्रचारिणी च।उक्तं च –सत्यहिंसागुणैः श्रेष्ठा, विश्वबन्धुत्वशिक्षिका, विश्वशान्तिसुखाधात्री, भारतीया हि संस्कृतिः।यथा कृषिकर्मणि तृणादिहेयरिहारेण अभीष्टाऽङ्कुरादिरक्षणं तथैव संस्कृत्या दुर्भावनिरोधपूर्वकम्। दुर्गुणदमनपुरःसरं च सद्गुणरत्नसङ्ग्रहोऽनुष्ठीयते।

वेदेषु धर्मसूत्रेषु, उपनिषत्सु, दर्शनेषु, स्मृतिग्रन्थेषु च महता विस्तारेण पुरुषार्थचतुष्टयस्य, कर्तव्याकर्तव्यस्य च विवृतिरूपस्थाप्यते, वेदेषु अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहादीनाम् अवश्यकर्तव्यत्वेन निर्देश उपलभ्यते। वेदमूलकमेव उपनिषदानीनामनुशासनम् उपनिषत्सु आत्मज्ञानं ब्रह्मप्राप्तिर्वा परमकर्तव्यत्वेन निर्दिश्यते। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः। आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्।

अस्य सर्वस्य मूलं किं? अस्य सर्वस्य मूलं संस्कृतं। किं नाम संस्कृतमिति जिज्ञासितं चेत् परिष्कृतं परिशुद्धं व्याकरणादिदोषरहितं यत् तत् संस्कृतम्।

प्राचीनैः ऋषिभिर्मुनिभिश्च भाषागतदोष परिष्कारेण अपशब्दादिदोषवारणेन या परिष्कृता भाषा सैव संस्कृतभाषानाम्ना सम्बोध्यते, 'विद्वांसो हि देवाः' विद्वज्जनः व्यवहृता चेयं भाषा, सैव देवभाषा, देववाणी, गीर्वाणवाणी इत्यादिभिः नामभिः। इयमेव भाषा विकृतिमापन्ना प्राकृतभाषा पदमुपगतवती। यतोहि एतासां भाषाणाम् मूलं रूपज्ञानाय एतस्याः भाषायाः आवश्यकता भवति। सेयं भाषा भारतीयानां प्राणरूपिणी, जीवनोन्नायिका सत्यप्रदर्शिनी, आचारविचारप्रवर्तिनी, कर्त्तव्याकर्त्तव्यबोधिनी लोकव्यवहारसम्पादिनी च। उद्घोष्यते चैतत् मनुना–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादगजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

सत्यमिदम् यत् अद्यतनीये युगे संस्कृतभाषा नितरामुपेक्षिता परीदृश्यते। किन्तु समेषां शेमुसीजुषाम् पुरस्तात् उच्चते मया यत् धर्मस्य मूलं संस्कृतं, संस्काराणां मूलं संस्कृतं, नैतिकतायाः मूलं संस्कृतं, ज्ञानस्य मूलं संस्कृतं, विज्ञानस्य मूलं संस्कृतं यतोहि ऐतैरेव स्तम्भैः उपस्थाप्यते संस्कृतिः।

मानवस्य मूलं संस्कृतिः संस्कृतेश्च संस्कृतम् अत उच्यते संस्कृताश्रया उक्तं च–

संस्कृतं संस्कृतिर्मूलं ज्ञानविज्ञानवारिधिः।
वेदतत्त्वार्थसंजुष्टं लोकलोकाकरैः शिवम्।।

■■■

योगः

– कुमारी रितिका
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

'योग' शब्दः युज्–समाधौ धातोः घञ्प्रत्ययं भूत्वा निष्पन्नः अस्ति। 'योग' शब्दः समाध्यर्थे प्रयुक्तोऽस्ति। योगः इति पदस्य व्युत्पत्तिलभ्यः अर्थः (चित्तवृत्तिनिरोधरूपं) समाधिः। योगः सर्वासु भूमिषु न्यूनाधिक्यभावेन धर्मः (विदितः) अस्ति अतः एतं चित्तस्य सार्वभौमं धर्मम् उच्यते। परञ्च योगः चित्तस्य द्वयोः भूमयोः वसन् धर्मः अस्ति– एकाग्रं निरूद्धं च वृत्त्याम् सार्वभौमाश्चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणो योगः महर्षिवेदव्यासेन चित्तवृत्तीनां निरोधं एव योगः उक्तः।

महर्षिवेदव्यासेन अन्तःकरणसामान्यं एव चित्तम् उक्तम् । तस्य अनुसारेण चित्तप्रकाशशीलः, चेष्टाशीलः स्थैर्यशीलः च त्रिगुणात्मकः वर्तते। चित्तं यस्मिन् रूपे व स्थित्यां भवति अर्थात् परिणतः भवति ताः स्थितयः एव चित्तवृत्तयः भवन्ति। चित्तस्य असंख्यवृत्तयः भवन्ति परञ्च सत्वादिगुणानां प्राधान्येन तासां तिस्रः भेदाः क्रियन्ते। सात्विकवृत्तिः राजसिकवृत्तिः तामसिक वृत्तिश्च।

एताभ्यः त्रिसृभ्यः वृत्तिभ्यः पञ्चविधा वृत्तयः वर्तन्ते। क्षिप्तः मूढ़ः विक्षिप्तः, एकाग्रः निरूद्धश्च। चित्तव्यापारां एताः विभिन्नवृत्तीः अर्थात् चित्तव्यापारं निग्रह एव चित्तवृत्तिनिरोधः भवति। तथा च एतानां वृत्तीनां चित्ते विलीनः भूयम् एव निरोधः अस्ति।

आचार्येण पतञ्जलिना–योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

सूत्रे केवलं 'चित्तवृत्तिनिरोधः' पदम् अस्ति। 'सर्वचित्तवृत्तिनिरोधः नैव। एतेन सूत्रकारेण सम्प्रज्ञातः असम्प्रज्ञातसमाधिः द्विधा समाधिः योगः उच्यते। समग्ररूपेण चित्तवृत्तीनां निरोधः असम्प्रज्ञातसमाधेः स्थित्याम् एव भवति, तथापि तस्मात् पूर्वस्थितिं सम्प्रज्ञातसमाधिः अपि योगः उच्यते। एतावत् एव न सम्प्रज्ञातसमाधिः स्थित्याम् अपि केवलं अस्मितानुगतः एव न वितर्कानुगतः आनन्दानुगतभूमिः च योगः उच्यते, यतोहि एताः भूमयः क्रमेण चित्तवृत्तीनां निरोधस्य सोपानं भूयन् निर्जीवसमाधिं प्राप्तुं सहायकाः भवन्ति।

अभ्यासः वैराग्यं च योगस्य उपायौ स्तः, तथा तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः अपि समाधेः उपायाः सन्ति, क्रियायोगः अभ्यासवैराग्यं च प्रकारकम् च योगसाधनानां कथनं क्रमेण उत्तममध्यमाधिकारिणे च उच्येते। क्रियासाधननिरूपणं तूत्तमाधिकारिभेदात्।

मन्दाधिकारिणां कृते अष्टाङ.गेषु सर्वाणि योगसाधनानि समायोजितानि। योगाङगानाम् अनुष्ठानफलस्वरूपाः पञ्चपर्वाः अविद्या, अस्मिता, द्वेषः, रागः, अभिनिवेशः। क्षये सति सम्यग्ज्ञानम् उद्भूयते। योगिनां समस्तकर्माणि क्षित्वा असम्प्रज्ञातसमाधिः जायते एवं कैवल्यं प्राप्नोति। यमः, नियमः, आसनः, प्राणायामः, प्रत्याहारः, धरणा, ध्यानः, समाधिः। एतेषु अष्टाङगेषु धारणा, ध्यानसमाधिः साक्षात् सहायकाः सन्ति, योगस्य अन्तरङ्गसाधनानि उच्यन्ते। यमः नियमः च योगस्य निषेधः हिंसादयवितर्कान् नाशयित्वा समाधेः सिद्धिं करोति। अन्ये त्रयः उपकारकाः सन्ति अर्थात् आसने सति प्राणयामत्य स्थिरता भवति तथा प्राणयामस्य स्थिरे सति प्रत्याहारस्य सिद्धिः भवति। मनुष्याः बहिर्मुखी भूत्वा बहुविध दुःखं आप्नुवन्ति। एतेषां दुःखानां निवृत्तेः क्रमानुसारेण अन्तर्मुखी भवितुं सरला उपायाः अष्टाङ्योगः अस्ति–

यमः बहिर्मुखतायाः अन्तर्भावस्था मनुष्याणां अन्यैः प्राणभिः सह व्यवहारः वर्तते। अतः सर्वप्रथमरूपेण एवं व्यवहारिकं जीवनं यमैः सात्त्विकः दिव्यं च भवितत्यम्। सकामकर्माणि यानि जन्मनः आयोः भोगानां च कारणानि सन्ति तथा बाह्यव्यवहाराणां सम्बन्धिनः रागःद्वेषः, ईर्ष्यां अभिनिवेशः क्लेशाः यमैः निवृतं भवति। पञ्चयमाः सन्ति– अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम्, ब्रह्मचर्यम्, अपरिग्रहं च। **अहिंसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।**

नियमः नियमानां सम्बन्धः स्वस्य व्यक्तिगतशरीरेण, इन्द्रियैः तथा अन्तःकरेण सह भवति। अतः नियमानां यथार्थसेवनेन व्यक्तीनाम् बाह्यव्यावहारिकं जीवनेभ्यः राजसी, तामसी, विक्षेपः आवरणरूपं मलम् च प्रक्षाल्य सात्त्विकं, पवित्रम् दिव्यं च भवति। पञ्चनियमाः उक्ताः शौचः, सन्तोषः, तपः, स्वाध्यायः, ईश्वरप्रणिधानम् च। **शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि नियमाः।**

आसनम् आसनस्य सम्बन्धः शारीरिकक्रियया सह वर्तते, एतद् शरीराणां संयमः वर्तते। एतेन शरीराणां रजरूपा चंचलता अस्थिरता च तमरूपम् आलस्यं प्रमादं च निर्वृत्य शरीरेषु सात्त्विकता प्रकाशः दिव्यता च उद्भूयते। आसनैः शरीरं स्वस्थः लघुः च योगसाधनस्य योग्यम् भवति। आसनम् य स्थिरः सुखदायी च भवेत् आसनम् उच्यते। **स्थिरसुखमासनम्।**

प्राणायाम् एतस्मिन् प्राणानां गति निरूह्य अथवा शनैः कृत्वा शरीरस्थ अन्तर्गतिं सात्त्विकं भवति। आसनस्य स्थिरे श्वासं प्रश्वासं च निरोधनम् प्रणायामः अस्ति। पूरकः कुम्भकः रेचकः च एतस्य प्रकारकाः सन्ति। **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदे प्राणायामः।**

प्रत्याहारः इन्द्रियाणि प्रकृत्यैव विषयोन्मुखानि भवन्ति। तेषां बहिर्मुखतां अन्तर्मुखीकरणम् इन्द्रियाणि बाह्यविषयेभ्यः निरूद्ध्य मनसि सन्निधाय एव प्रत्याहारः भवति। एतेन इन्द्रियाणां आलस्यम् प्रमादम् तमोगुणम् बहिर्मुखरजसं शून्यं कृत्वा इन्द्रयाणि सात्त्विकरूपं चित्तेन सह अन्तर्मुखं कृत्वा दिव्यम् भावयितव्यम्। **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।**

धारणा चित्तं वृत्तिमात्रेण स्थानविशेषे सन्निधानम् एव धारणा उच्यते। **देशबन्धश्चितस्य धारणा।**

ध्यानम् अस्याम् अवस्थायां ध्येयं विहाय अन्यविषयः न प्रतीयते तथा अन्यज्ञानेभ्यः अविच्छिन्नधारा ध्यानम् वर्तते। तत् ध्यानम् एव समाधिः वर्तते, यस्मिन् ध्याने केवलम् ध्येयः अर्थमात्रेण आसते तथा तस्य ध्यानस्य स्वरूपं शून्यमिव भवति। समाध्यर्थः वर्तते ध्येयवस्तुनि चित्तस्य विक्षेपरहिता एकाग्रता। समाधेः द्वौ प्रकारौ स्तः। सम्प्रज्ञातः असम्प्रज्ञातः च समाधिः। सम्प्रज्ञातसमाधौ ध्येयवस्तुनः ज्ञानं भवति। असम्प्रज्ञातसमाधौ ध्याता तथा ध्यानम् उभावपि ध्येयाकारः भवति एतयोः ध्येयभ्यः पृथक् अनुभूतिः न भवति। असम्प्रज्ञातसमाधौ ध्येयवस्तुनः ज्ञानमपि न भवति। ध्येयः ध्यानम् ध्याता च त्रिपुटीनां अनिर्वचनीयतया विलीनः भवति।

■■■

भ्रष्टाचारस्य उन्मूलनम्

– **तारकेश्वरः झा**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

भ्रष्टाचारस्तु सर्वेषां, पापानां मूलकारणम्।

भ्रष्टाचारेण लोकानां, सन्मतिः क्षीयते सदा।।

कः भ्रष्टाचारः? अनुचितसाधनेन धनोपार्जनम्। भ्रष्टाचारः अनेकरूपः - यथा उत्कोचग्रहणम्, खाद्यवस्तुषु अखाद्यस्य मिश्रणम्, अनुचितसाधनेन धनप्राप्तिः, स्वेष्टकार्यस्य संपादनार्थम् उत्कोचप्रदानम्। साम्प्रतं भारतवर्षे भ्रष्टाचारः विषवृक्षवत् संवर्धते। उत्कोचदानम्, उत्कोचग्रहणं च आमूलं दृश्यते। उत्कोचप्रदानं विना राजकीयकार्यालयादिषु स्वल्पमपि कार्यं साधयितुं न शक्यते। पदे पदे उत्कोचग्रहणसमस्या वर्तते। केवलं सामान्याः अधिकारिणः एव अत्र न प्रवर्तन्ते, अपितु उच्चाधिकारिणः अपि आमूलम् उत्कोचग्रहणे प्रवृत्ताः। 'यथा राजा तथा प्रजा' यदा उच्चाधिकारिणः उत्कोचं गृह्णन्ति, तदा निम्नपदस्थाः अधिकारिणः अपि निर्भयम् उत्कोचग्रहणे प्रवर्तन्ते। भारते भ्रष्टाचारस्य स्थितिः भयावहा वर्तते। सामान्यजनाः किंकर्तव्यविमूढ़ा वर्तन्ते। कं नु शरणं गच्छामि, न कश्चित् मां श्रृणोति।

भ्रष्टाचारः शतविधः। यो यत्र वर्तते, स तत्रैव भ्रष्टाचारे प्रवृत्तः। मन्त्रिणः सांसदाः, विधायकाः अपि एतस्मिन् कार्ये न लज्जाम् अनुभवन्ति।

सत्यम् एतद् यद् भ्रष्टाचारः असाध्यो रोगः। परन्तु निपुणाः भिषजः असाध्यामपि रोगं साध्यं कुर्वन्ति। यत्ने कृते नहि किंचिद् असाध्यं भवति। सर्वकारस्य शिथिलतैव अत्र प्रमुखं कारणम्। यदि सर्वकारः दृढ़निश्ययेन प्रवर्तते, तदा न किंचिद् असाध्यम्।

भ्रष्टाचारस्य निषेधोपायाः। आचारशिक्षायाः नैतिकशिक्षायाश्च शतविधः प्रचारः प्रसारः च स्यात्। कठोरदण्डव्यवस्था भवेत्। महाभारते उच्यते– 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः, दण्ड एवाभिरक्षति'। धनलोलुपतायाः परित्यागस्य शिक्षणम्। विलासिजीवनस्य परित्यागः। कठोरश्रमस्य शिक्षा। राजपुरूषाणां चलाचलसंपत्ते घोषणा अनिवार्या स्यात्। मनोः शिक्षायाः प्रसारणम्। यथा–

अधर्मेणैधते तावत्, ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति।। (मनु : 4.174)

■■■

संस्कृतभाषाया महत्त्वम्

– अञ्जली
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

अद्य स्वस्मिन् लेखे 'संस्कृतस्य महत्त्वम्' अस्मिन् विषये स्व–विचारान् प्रस्तौमि। संस्कृतभाषा सर्वासु भाषासु प्राचीनतमा भाषा वर्तते। इयं भाषा न केवलं तेषां कृते अस्ति ये महाविद्यालये विद्यालये वा पठन्ति पाठयन्ति वा अपितु तेषां कृते अपि अस्ति ये जनाः अन्यान् विषयान् जानन्ति उत वा अन्य क्षेत्रेषु संलग्नाः सन्ति। दैवैः प्रयुक्तैः एषा संस्कृतभाषा प्राचीनसमये अस्माकं मातृभाषारूपेण प्रतिष्ठिता आसीत्।

यथा वयं जानीमः एव संस्कृतभाषा भारतस्य अनेकानां भाषाणां जननी अस्ति। एषा न तु केवलं भारतीयभाषाणामेव अपितु विश्वस्य अनेकानां भाषाणां यथा– ग्रीक–जर्मन–ईरानीआङ्गलादीना': भाषाणामपि जननी अस्ति। विश्वस्य बहूनां भाषाणां शब्दाः संस्कृतात् स्वीकृताः सन्ति उत् संस्कृतेन सम्बन्धाः सन्ति। संस्कृतभाषायाः शब्दकोषे कोटि शब्दाः सन्ति। एतावत् शब्दाः सन् अपि अस्यां भाषायां न्यूनैः शब्दैः वाक्यानि निर्मातुं शक्नुमः। 'नासा' अपि एतां वार्ताम् अङ्गीकरोति यत् पृथिव्यां याः याः भाषाः विद्यमानाः तासु सर्वासु भाषासु संस्कृतमुत्तमं सरलं स्पष्टं च अस्ति।

संस्कृतभाषायाः उपरि अनुसन्धानं कृत्वा एतत् ज्ञायते यत् संस्कृतमेव तादृशी भाषा अस्ति यस्याः उच्चारणे मुखेषु विद्यमानाः सर्वाः अवयवाः सक्रियाः भवन्ति। येन अस्माकं रक्तप्रवाहः अपि उत्तमः भवति।

अनुसन्धानैः सिद्धं कृतं यत् संस्कृताध्ययनेन बुद्धिः तीव्रा भवति। अतः एव ब्रिटेन–आयरलैण्डः एतादृशेषु देशेषु छात्राणां कृते संस्कृतम् अनिवार्यं कृतम्। अमरीका–चीन इव देशेषु अपि प्रवेशिका कक्षातः एवं छात्राः संस्कृतं पठन्ति तत्र च संस्कृताध्यपनस्य व्यवस्था अस्ति। अमेरिकायां नासावैज्ञानिकैः स्वीकृतम् यत् संङ्गणकस्य कृते संस्कृतभाषा सर्वोत्तमा वैज्ञानिका च भाषा वर्तते। उदाहरणस्वरूपेण– यतोहि संस्कृतेन न्यूनैः शब्दैः अपि सन्देशं प्रेषयितुं शक्नुमः अथ च पदानां क्रमः अपि अत्र नापेक्षितम्। अत्याधुनिकस्य युगस्य नासा वैज्ञानिकाः यत् संङ्गणकस्य निर्माणं कुर्वन्तः सन्ति तत् सङ्गणकं संस्कृते एवं आश्रितः भविष्यति। एतत् सङ्गणकं 2034 तमे वर्षे भौतिके स्वरूपे आगमिष्यति। संस्कृतं वैज्ञानिकी भाषास्ति। इयं भाषा सरला अस्ति एतेन कारणेन व्यवहारे अस्याः भाषायाः प्रयोगं सहजरूपेण कर्तुं शक्नुमः। अस्याः भाषायाः सरलप्रकृत्या कारणेन, संस्कृत सम्भाषणेन 'तन्त्रिकातन्त्रं' सकारात्मकावेशेन सक्रियः भवति तथा शरीरे 'सकारात्मकशक्तिः' आगच्छति।

'ओ३म्' इत्यस्य उच्चारणमात्रेणैव अनेकानां रोगाणाम् उपचारः स्वयमेव भवति। संस्कृतस्य अनुस्वारीयः विसर्गीयः ध्वनेः उच्चारणेन 'प्राणायामः' स्वयमेव सिद्ध्यति इत्युक्ते व्यस्तजीवने अपि संस्कृतशब्दानां प्रयोगैः योगासनं कर्तुं शक्नुमः। संस्कारयुक्ता भाषा नाम संस्कृतम्। संस्कृतसाहित्ये नैतिकशिक्षा विद्यते। पठनेन व्यवहारेण च आनीय बालकेषु संस्कारान् उत्पादयितुं शक्नुमः। अद्यापि सन्ध्यावन्दनादिषु विवाहादिषु कार्येषु च साहित्याध्ययेनन जीवने प्रयोगेण च मन्त्राः उच्चारयन्ति। कर्मकाण्डस्य एव न अपितु अनेन समाजस्य जीवनस्य च विविधानि पक्षाणि उपयुज्यन्ते।

■■■

संस्कृतवाङ्मये शासनस्य स्थितिः अधिकाराः कर्त्तव्यानि च

– **धनञ्जयः कुमारः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

संस्कृतवाङ्मये– वैदिकसंहितासु, ब्राह्मणग्रन्थेषु, उपनिषत्सु, रामयणे, महाभारते, पुराणेषु, कौटिल्यार्थशास्त्रे, नीतिग्रन्थेषु, काव्येषु, नाटकेषु शासनस्य विभिन्नाः पद्धतयः उल्लिखिताः सन्ति। शासनतन्त्रस्य अधिकाराणां कर्त्तव्यानां च चर्चा विद्यते परमस्मिन् लेखे वैदिक–वाङ्मये एव वर्णितानां शासनपद्धतीनां चर्चा क्रियते।

अथर्ववेदस्य अष्टमे मण्डले दशमसूक्तस्य प्रथमः पर्यायः शासनतन्त्रस्य विकासक्रमं सूचयति। सर्वप्रथमं राज्यतन्त्रविहीना स्थितिः आसीत्। ईदृशीम् अवस्थां दृष्ट्वा सर्वे भीताः आसन्। तदनन्तरं गार्हपत्यं विकासितम् अभूत् एवं परिवारः गार्हपत्यं वा शासनसंस्था आसीत् यत्र गृहपतिः आसीत् शासकः। गार्हपत्यादनन्तरम् आहवनीयं विकसितं यत्र कुलमुख्याः आहूताः अभूवन्। आहवनीयात् अनन्तरं दक्षिणाग्निसंस्था सम्पन्ना यत्र ग्राममुख्या शासकाः आसन्। तदनन्तरं सभायाः समिते च विकासः अभवत्। कापिष्ठलकठसंहितायां पठ्यते 'आमन्त्रणम् आहूतो यायात् तस्मात् आमन्त्रणे न अमृतं वदेत्' सम्भवतः आमन्त्रणसंस्था न्यायालयः आसीत् यत्र अपराधनिर्णयः दण्डव्यवस्था च अभूताम्।

वैदिकयुगे शासनतन्त्रस्य प्रमुखः तु राजा आसीत् परं सः निरंकुशः न आसीत्। राजा प्रजाभिः एव वृतः अभवत्। अथर्ववेदे उक्तम्– ''त्वा विशो वृणुतां राज्याय त्वाभिमः प्रदिशः पंचदेवीः। वृ धातोः अर्थाः वरणं चयनं स्वीकरणं च। स्पष्टम् इदं यत् जनैः स्वीकृतः एव राजा भवितुं शक्नोति स्म। अथर्ववेदस्य बहुषु मन्त्रेण वैदिकशासनव्यवस्थायां सभायाः समितेः च महत्वं वर्णितं यथा–

सर्वा विशः संमनसः सध्रीची ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह।

अथर्ववेद 6.88.3

राज्ञ आयोग्यत्व तदैव आसीत् यदा

नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्।

अथर्ववेद 5.1.15

सभायाः समितेः च सदस्या मम आनुकूल्यं भजेयुः इति एव आसीत् शासकस्य बलवती कामना प्रार्थना वा–

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।

येना संगच्छा उपमा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु।।

अथर्ववेद 7.12.1

अस्यसूक्तस्य अन्यमन्त्रेषु अपि राज्ञः प्रार्थना विद्यते यत् सभायाः सभासदः तस्य सवाचसः भवन्तु–

विद्म ते समेनाम नरिष्टा नाम वा असि।

ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः।।

अथर्ववेद 7.1.22

एवम् एव ऋग्वेदस्य दशमे मण्डले ऋषभं मां समानानामिति पंचमे सूक्ते समितेः स्वचितानुकारित्वं प्राप्तुं प्रार्थना विद्यते। ऋग्वेदस्य अन्तिमे सूक्ते समितेः। सदस्यानाम् एकमत्यस्य प्राधान्यं वर्णितम् अस्ति। अस्मिन् पत्रे शासनतन्त्रमधिकृत्य या सामग्री वैदिक वाङ्मये विद्यते तस्या चर्चा कृता अस्ति।

■■■

वेदानां महत्त्वम्

– **स्वस्तिः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्''

''भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।''

वेदो हि अपौरुषेयं ज्ञानम्। एते एव विश्वस्य प्राचीनतमा धर्मग्रन्थाश्च सन्ति। प्राच्याः पाश्चात्याः सर्वेऽपि विद्वांसो वेदानां समादरं कुर्वन्ति। भारतीया वेदानां निन्दां श्रोतुमपि न शक्नुवन्ति। ये वेदान् निन्दन्ति ते तु नास्तिका एव मन्यन्ते उक्तमपि–

''नास्तिको वेदनिन्दकः''

स्मृतिकारैस्तु नैतावतैव विरम्यतेऽपितु निर्देश्यते यत् ब्राह्मणेन एकनिष्ठया वेदाध्ययनं संपाद्यम्। एतद् ब्राह्मणस्य परमं तपः। ये तु वेदाध्ययनं न कुर्वन्ति ते खलु निन्दिताः सन्ति। अपि च जीवन्नेव सपरिवारं ते शूद्रत्वमुपयान्ति।

आचार्य मनुरुचितमेव कथयति यत्–

''योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।

वेदाश्चत्वारः सन्ति– ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदश्चेति। वेदानामुत्पत्तिविषये भारतीयानामिदं मतमस्ति यत् सृष्ट्यादौ एव मुक्तावस्थायाः परावर्तितेभ्य अग्नि–वायु–

आदित्य–अंगिरा–नामधेय–आप्तऋषिवरेभ्यः परमेश्वरेण वेदज्ञानमुपदिष्टम्। ते हि साक्षत्कृतधर्माण आसन्।

वेदेषुज्ञानविज्ञानराजधर्मसृष्ट्युत्पत्तिः,प्रजापालननौविमानविद्यागणित– विद्यादीनां सर्वेषामेव विषयाणां वर्णनं समुपलभ्यते। नास्ति कोऽपि एतादृशो विषयो ज्ञानं वा यद्वेदेषु वर्णितं व्याख्यातं वा न स्यात्। वेदः सर्वज्ञानमय इत्युक्तं महाराजमनुना स्वीयायां मनुस्मृतौ–

''यः कश्चित्कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।''

यजुर्वेदे प्राप्यते–

''सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।''

''इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः।।''

साक्षिप्तो वेदानां विषये वक्तुमिदं शक्यते यत् ऋग्वेदः ज्ञानकाण्डरूपेण, यजुर्वेदः कर्मकाण्डरूपेण, सामवेद उपासनाकाण्डरूपेण तथा अथर्ववेदो विज्ञानकाण्डरूपेण लोकव्यवहाररूपेण च व्याख्यायते।

वेदेषु स्वस्थजीवनस्य दीर्घायुषश्च
कामना प्रार्थना च स्थाने स्थाने दृश्यते–

''जीवेम शरदः शतम्'' इति।

धार्मिकदृष्ट्या तु वेदानां महत्त्वं सर्वविदितमेव। विभिन्नभारतीय– सम्प्रदायानां मूलतत्त्वानि वेदेषु एव निहितानि सन्ति।

'मनुर्भव' 'मा भेमः, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः – इत्येते वेदोपदेशाः सार्वकालिकाः सार्वभौमिकाश्च। मानवजीवनस्य कश्चिदपि भागः कतमदपि क्षेत्रं नास्ति यत्र वेदाः प्रमाणं न स्युः। **अत एव बहुविधः खलु वेदमहिमा।**

■■■

संस्कृतभाषायाः गौरवम्

– रविना
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

संस्कृतं पुरा भारतीयानां लोकप्रिया जनभाषा आसीत्। रामायण– महाभारतकाले संस्कृतम् एव जनभाषारूपेण प्रचलितम् आसीत्। वाल्मीकिरामायणे इमा भाषा 'मानुषा' नाम्ना निर्दिष्टा अस्ति।

संस्कृतम् एव आधुनिकप्रान्तीयभाषाणाम् जननी अस्ति। सर्वासु प्रान्तीयभाषासु प्रतिशतकं षष्ठिशब्दाः संस्कृतभाषायाः एव सन्ति। साम्प्रतं संस्कृतमेव प्रान्तीयभाषा सुजीवनं सञ्चारयितुं प्रभवति। संस्कृतस्य ज्ञानादेव प्रान्तीयभाषाणाम् सम्यग् ज्ञानं भवति।

अधुना हिन्दीभाषा राष्ट्रभाषा सञ्जाता। तस्य समुन्नतिः कथं स्यात्? संस्कृतमेव एकमात्रभाषा यस्याः शब्दकोशः विशालः सुसम्पन्नः च अस्ति। अतः संस्कृतमेव हिन्दीभाषां समृद्धं सम्पन्नं च कर्तुं प्रभवति।

संस्कृतस्य व्याकरणम् अपि अप्रतिमम् अस्ति। अस्य व्याकरणे अपूर्वा शब्दरचनाशक्तिः विद्यते। यथा आङ्लभाषा लैटिनादितः शब्दान् अङ्गीकृत्य आत्मानं भरति तथैव संस्कृतभाषातः शब्दान् गृहीत्वा हिन्दीभाषा अपि निजशब्दराशिप्रवर्धनैव आत्मानं सम्पन्नं समृद्धं च कर्तुं पारयति।

भाषाविज्ञानस्य सम्यग् ज्ञानार्थं संस्कृतस्य ज्ञानम् अनिवार्यम् अस्ति। काव्यशास्त्रस्य नाट्यशास्त्रस्य च अपि विवेचनं संस्कृतस्य ज्ञानं विना कोऽपि कर्तुं न शक्नोति। भारतीय पुरातवस्य छात्राणां कृते तु संस्कृतस्य ज्ञानम् अपरिहार्यं वर्तते। प्राच्यभारोपीयभाषाणां सम्यक्परिशीलनाय संस्कृतस्य ज्ञानम् अत्यावश्यकं वर्तते। भारतीयधर्मस्य संस्कृतेः तत्त्वज्ञानस्य च परिशीलनार्थं संस्कृतम् एव एकः आधारः अस्ति।

पाणिनिव्याकरणस्य अध्ययनात् अयं बोधो जायते यत् परः सहस्रवर्षेभ्यः प्राक् इयं भाषा चरमां समृद्धिम् अभजत्। न केवलं पौराणिकाः धर्मग्रन्थाः एव संस्कृतभाषायां निबद्धाः सन्ति अपितु बहवः जैनबौद्धग्रन्थाः अपि संस्कृतभाषायाम् एव निबद्धाः सन्ति। पालिप्राकृतभाषाणाम् आकलनम् संस्कृतं विना अपूर्णम् एव अस्ति। अतः संस्कृतभाषायाः गौरवं महत्वं च सर्वविदितम् अस्ति।

■■■

संस्कृतस्य वैशिष्ट्यम्

– जयकृष्णः
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

संस्कृतभाषा विश्वस्य सर्वासु भाषासु प्राचीनतमा सर्वोत्तमसाहित्यसंयुक्ता चास्ति। संस्कृतभाषाया उपयोगिता एतस्मात् कारणाद् वर्तते यद् एषैव सा भाषास्ति यतः सर्वासां भारतीयानाम् आर्यभाषाणाम् उत्पत्तिर्बभूव। सर्वासामेतासां भाषणाम् इयं जननी। सर्वभाषाणां मूलरूपज्ञानाय एतस्या आवश्यकता भवति। प्राचीने समये एषैव भाषा सर्वसाधारणा आसीत्, सर्वे जनाः संस्कृतभाषाम् एव वदन्ति स्म। अतः ईसवीयसंवत्सरात्पूर्वं प्रायः समग्रमपि साहित्यं संस्कृतभाषायामेव उपलभ्यते। संस्कृतभाषायाः सर्वे जनाः प्रयोगं कुर्वन्ति स्म इति तु निरूक्तमहाभाष्यादिग्रन्थेभ्यः सर्वथा सिद्धमेव। आधुनिकं भाषाविज्ञानमपि एतदेव सुनिश्चयं प्रमाणयति।

संस्कृतभाषायामेव विश्वसाहित्यस्य सर्वप्राचीनग्रन्थाः चत्वारो वेदाः सन्ति, येषां महत्त्वमद्यापि सर्वोपरि वर्तते। वेदेषु मनुष्याणां कर्त्तव्याकर्त्तव्यस्य सम्यक्तया निर्धारणं वर्तते। वेदानां व्याख्यानभूता ब्राह्मणग्रन्थाः सन्ति। तदनन्तरम् अध्यात्मविषयप्रतिपादिका उपनिषदः सन्ति, यासां महिमा पाश्चात्यैरपि निःसंकोचं गीयते। ततश्च भारतगौरवभूताः षड्दर्शनग्रन्थाः सन्ति, ये विश्वसाहित्येऽद्यापि सर्वमान्याः सन्ति। ततश्च श्रौतसूत्राणां, गृह्यसूत्राणां, धर्मसूत्राणां, वेदस्य व्याख्यानभूतानां षडङ्गानां च गणना भवति।

महर्षिवाल्मीकिकृत रामायणस्य, महर्षिव्यासकृत-

महाभारतस्य च रचना विश्वसाहित्येऽपूर्वा घटना आसीत्। सर्वप्रथमं कवित्वस्य, प्रकृतिसौन्दर्यस्य, नीतिशास्त्रस्य, अध्यात्मविद्यायाः तत्र दर्शनं भवति। तदनन्तरं कौटिल्यसदृशाः अर्थशास्त्रकाराः, भासकालिदासाश्वघोषभवभूतिदण्डिसुबन्धुबाणजयदेवप्रभृतयो महाकवयो नाट्यकाराश्च पुरतः समायान्ति, येषां जन्मलाभेन न केवलं भारतभूमिरेव अपितु समस्तं विश्वमेतद् धन्यमस्ति। एतेषां कविवराणां गुणगणस्य वर्णने महाविद्वांसोऽपि असमर्थाः सन्ति, का गणना साधारणानां जनानाम्। भगवद्गीता, पुराणानि, स्मृतिग्रन्थाः अन्यद्विषयकं च सर्वं साहित्यं संस्कृतस्य माहात्म्यमेवोद्घोषयति।

संस्कृतभाषैव भारतस्य प्राणभूता भाषाऽस्ति। एषैव समस्तं भारतवर्षमेकसूत्रे बध्नाति। भारतीगौरवस्य रक्षणाय एतस्याः प्रचारः प्रसारश्च सर्वैरेव कर्तव्यः।

■■■

योगः

– **निशांतः कुमारः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

योगविद्या भारतवर्षस्य अमूल्यनिधिः। पुराकालादेव अविच्छिन्नरूपेण प्रचलिता आसीत् गुरुपरम्परेयम्। वस्तुतः ऋषिमुनियोगिनामध्यवसायजनितं साधनालब्धं अन्तर्जगतो महत्वपूर्णमन्तर्विज्ञानं भवति अनेन योगसमाधिना ऋषयो मन्त्रान् द्रष्टुं समर्थाः आसन्। श्रीमद्भगवतगीतायां योगस्य द्विविधत्वं वर्णितं श्रीकृष्णेन। यथा– ज्ञानयोगः, कर्मयोगश्च। परम्परानिरपेक्षं मोक्षसाधनत्वेन कर्मज्ञानयोगरूपं निष्ठाद्वयमुक्तम्। योगदर्शनानुसारेण योगस्य अष्टौ अङ्गानि सन्ति। तदुक्तं योगदर्शने यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारण– ध्यान–समधयोऽंगानि सन्ति। एतेषां बहिरङ्गान्तरङ्गभेदेन द्विविधत्वं कल्पते।बहिरङ्गानि सन्ति।एतेषुयम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहारादीनि पञ्चाङ्गानि धारणा–ध्यान–समाधीति त्रीणि अन्तरङ्गाणि भवन्ति। यतो हि एतेषामन्तःकरणेन साकमेव सम्बन्धो विद्यते। अतः एतेषामन्तरङ्गत्वम्। महर्षिणा पतञ्जलिना त्रयाणां कृते संयमः इत्युच्यते। तद्यथा–त्रयमेकत्र संयमः।अष्टाङ्गयोगद्वारा प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा–स्मृत्यादिपञ्च प्रवृत्तीनां निरोधं कृत्वा योगसमाधौ प्रविशति योगी। कर्मफलमनपेक्षमाण सन् अवश्यं कार्यतया विहितं कर्म यः करोति स एव योगी भवति। इन्द्रियभोगेषु तत्साधनेषु च कर्मसु सदा आसक्तिं न करोति, सर्वान् भोगविषयान् परित्यजति तदा स योगारुढं उच्यते। स एकान्ते स्थितः सन् सङ्गशून्यो भूत्वा मनः वशीकृत्य आशां परिग्रहञ्च परित्यज्य सततमात्मानं समाहितां कुर्यात्। तत्रासनमुपविश्य एकाग्रं विक्षेपरहितं मनः कृत्वा योगमभ्यसेत्। यस्य आहारः विहारश्च नियमितः सर्वेषु कर्मषु यस्य चेष्टा नियमिता, यस्य शयनं जागरणञ्च नियमितं तस्य दुःखनिवर्त्तको योगो सिध्यति।

■■■

अनुशासनम्

– **रूम्पा कयालः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

अनुशासनम् अर्थात् शासनेन निर्मितानि नियमानि पालयन्तः इति अनुशासितः कथ्यते। अनुशासनाभावे समाजे उच्छृंखलता आगच्छति। परिवारिकी व्यवस्था नश्यति। विद्यार्थिनः उद्दण्डाः भवन्ति वणिकाः अधिकं लाभम् इच्छन्ति। अनुशासनं देशाय समाजाय मनुष्याय परं आवश्यकमस्ति। अनुशासनं 'अनु' उपसर्गः तथा 'शासनम्' इति शब्दाभ्याम् निर्मितम् अस्ति। नक्षत्रः चन्द्रः सूर्यः च सर्वे अनुशासने बद्धाः सन्ति। छात्राणां कृते अनुशासनस्य बहुमहत्वम् अस्ति। अस्मिन् काले तेषां मनस्सु यः प्रभावः सम्पद्यते सः स्थायी भवति। अतः अस्माकं जीवने अनुशासनस्य अतिमहत्वम् अस्ति।

■■■

सदाचारः

– **स्मृतिः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) प्रथमवर्षम्

सताम् आचारः सदाचारः कथ्यते। सदाचारी नरः कीर्तिं भूतिं च लभते। प्रातःकाले उत्थाय मातापितरौ, वृद्धान् गुरून् च प्रणमेत्। सदाचारेण मानवजीवनस्य सर्वविधा उन्नतिः भवति। अतएव सदाचारः उन्नत्याः द्वारमस्ति। गुरुजनानां सेवासरलतासत्यभाषणम् आदिगुणानां गणना सदाचारे भवति। इदानीं रामचन्द्रस्य मर्यादापुरुषोत्तमस्य जीवनं सदाचारस्य उत्कृष्टम् उदाहरणम् अस्ति। सदाचारिणः सर्वत्र यशः लभन्ते अथ अस्माभिः सर्वतोभावेन सदाचारः पालनीयः।

■■■

संस्कृतसाहित्ये रसानां महत्त्वम्

– **पूनमः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

भारतीयकाव्यशास्त्रस्य सर्वाधिकी महत्त्वपूर्णोपलब्धिः अस्ति रसः। 'रस' शब्दः रस् धातोः अच् प्रत्यये कृते निष्पन्नः अस्ति। संस्कृते 'रस' शब्दस्य व्युत्पत्तिः एतद् प्रकारेण कथ्यते 'रस्यते इति रसः' अर्थात् यस्य आस्वादनं भवति स एव रसः। तैत्तिरीयोपनिषदि रसानां उल्लेखः अनेकप्रकारेण कृतः अस्ति– ''रसो वै रसः'' सः। आचार्य मम्मटेन रससः परिभाषा एवं कृता

विभावानुभावास्तत्र कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।।

नाट्यशास्त्रस्य प्रणेता भरतमुनिनेः अनुसारेण 'रस इत्यस्य परिभाषा अस्ति–विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

रसस्य चत्वारः प्रकाराः सन्ति– स्थायीभावः, विभावः, अनुभावः संचारीभावः च।

स्थायीभावः मनसः विकारं स्थायीभावः कथ्यते। 'विकारो मानसो भावः एतस्य अष्टभेदाः सन्ति– रतिः, हास्यः, शोकः, क्रोधः, उत्साहः, भयः, जुगुप्सा, विस्मयः च।

विभाव : रसः उद्बुद्धाय यः हेतुः भवति सः विभावः उच्यते। विभावस्य प्रकारद्वयम् अस्ति– आलम्बनविभावः, उद्दीपनविभावः च।

अनुभावः येन भावस्य अनुगमनं क्रियते, सः अनुभावः भवति– 'अनुभावयन्ति इति अनुभावाः। एतस्य पञ्चभेदाः सन्ति–कायिकः, वाचिकः, मानसिकः, आहार्यः, सात्त्विकः च।

संचारी भावः अस्थिराः मनोविकाराः संचारीभावाः उच्यन्ते। तेषां संख्या त्रयस्त्रिंशत् अस्ति।

मुख्यतया रसानां नवभेदाः कथ्यन्ते– शृंगारः, हास्यः, करुणः, रौद्रः, वीरः, भयानकः, वीभत्सः, अद्भुतः, शान्तः च। आचार्यैः भक्तिः वात्सल्यः च अपि रसासि गण्यते।

रसभेदाः

शृंगाररसः

शृगं हि मन्मथोभेदस्तदागमनहेतुकः।

उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।।

हास्यरसः

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।

हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः।।

करूणरसः

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करूणाख्यो रसो भवेत्।

धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।।

रौद्ररसः

रौद्रः क्रोधस्थायिभावो रक्तो रूद्राधिदैवतः।

आलम्बनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।

वीररसः

उत्तमप्रकृतिर्वीरः उत्साहस्थायिभावकः।

महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।।

भयानकरसः

भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः।

स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः।।

वीभत्सरसः

जुगुप्सास्थायिभावस्तु वीभत्सः कथ्यते रसः।

नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः।।

अद्भुतरसः

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः।

पीतवर्णो वस्तुलोकातिगमालम्बनं मतम्।।

शान्तरसः

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।

कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः।।

रसानां महत्त्वम्संस्कृतसाहित्ये रसानां विशेषस्थानम्अस्ति। 'साहित्यदर्पणे' आचार्य विश्वनाथेन उच्यते– 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसात्मकं वाक्यमेव काव्यम् अस्ति।

आचार्येण भरतेन उक्तं यत्– ''नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्त्तते'' अर्थात् किमपि रसहीनकाव्यं न भवितव्यम्।

''रसः काव्यस्य आत्मा वर्तते, काव्येषु यो आनन्दः अनुभूयते सः एव काव्यस्य रसः अस्ति।

सहृदयैः काव्येषु यः आनन्दः अनुभूयते स रसः लौकिकः न भूत्वा अलौकिकः एव भवति।

आचार्यआनन्दवर्द्धनः काव्येषु रसानां उपयोगितां एवं अवदत्– दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था काव्ये रस परिग्रहात्।

सर्वे नवा इवाभवन्ति मधुमास इव द्रुमाः।।

एतेन प्रकारेण दण्डिना अपि, 'कामे सर्वोप्यलंकारो रसं अर्थे निष्पत्ति इति उक्त्वा रसं प्रति स्वस्य आस्था अभिव्यक्ता। अभिप्रायः यत् अस्ति– रसः सर्वेषु काव्यसिद्धान्तेषु स्वीकृतः।

■■■

सर्वेषां कृते

– **रितुः लक्ष्मीश्च**
बी.ए., संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

प्रारम्भे स्फटिकात् बिन्दोः एकः वृत्तः उत्पन्नः बभूव। शेषः बिन्दुः परमंतत्वम् (शिवः अलखः निरंजनः) अस्ति। वृत्तात् एकोऽन्यः वृत्तः उत्पन्नः बभूव। शेषः वृत्तः परतत्वः (आदि शक्तिः) अस्ति। द्वितीयवृत्तात् द्वौ अर्धवृत्तौ उत्पन्नौ बभूवतुः। शेषः द्वितीयवृत्तम् आकाशतत्त्वम् (अर्धनारीश्वरः) अस्ति। द्वौ अर्धवृत्तौ पार्वतीमहादेवौ स्तः। तौ वायुतत्वौ स्तः। महादेवस्य कण्ठात् पादौ पर्यन्तम् एतस्मात् भागात् विष्णुः, पार्वत्याः च एतस्मात् भागात् लक्ष्मीः उत्पन्नः बभूव। लक्ष्मीविष्णू अग्नितत्त्वौ स्तः। महादेवस्य नाभिकेन्द्रात् पादौ पर्यन्तम् एतस्मात् भागात् ब्रह्मा, पार्वत्याः च एतस्मात् भागात् सरस्वती उत्पन्नः बभूव। ब्रह्मासरस्वत्यौ जलतत्त्वौ स्तः। महादेवस्य लिङ्गस्य मलद्वारस्य मध्यभागात् कामदेवः पार्वत्याः च एतस्मात् देवभागात् कामदेवी उत्पन्ना बभूव। कामदेवकामिन्यौ पृथ्वीतत्त्वौ स्तः। एतेषां सप्ततत्त्वानाम् अंशसृष्टिः मानवपिण्डः अस्ति। परतत्त्वं सामवेदस्य मूलम् अस्ति। वायुवग्निजलाकाशाः यजुर्वेदस्य मूलम् अस्ति। पृथ्वीतत्त्वम् अथर्ववेदस्य मूलम् अस्ति।

मानवः पृथ्वी–जल–अग्नि–वायु–आकाश–महा आकाशात् च यथा क्रमेण सिद्धं कृत्वा (पारं कृत्वा) परमतत्त्वं प्राप्नोति। एतेन क्रमेण विना परमतत्वे गमनम् असम्भवम् अस्ति। त्वं कुत्र असि ? इति तव विषयः। शब्दः मन्त्रः ध्वनिः च परमतत्त्वम् अस्ति।

ध्वनिरहितौ शब्दमन्त्रौ परमतत्त्वम् प्रभावितं करोति।

परमतत्त्वम् –शिवम्

परमतत्त्वम् स्वरूपम् निरंजनतत्त्वम् (गो–रक्षम्)–सत्यम्

परमतत्त्वस्य शक्तिः पर तत्त्वम्–सुन्दरम्

ध्वनिसहितैः शब्दमन्त्रैः ध्वनिरहितैः शब्दमन्त्रैः च निरंजनतत्त्वम् प्रभावितम् भवति।

■■■

गीतम् – "कः त्वां प्रेष्यति"

– **अनुवादकः राहुलकुमारः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्
चलचित्रम् – एम. एस. धोनी
गीतम्– कौन तुझे यूँ प्यार करेगा

त्वम् आयासि वक्षस्थले।
यदा यदा श्वासं स्वीकरोमि।
तव हृदयस्य वीथीभ्यः।
प्रतिदिनम् अहं भ्रमामि।
वायुः इव चलसि त्वम्।
अहं सिकतेव उद्यामि।
कः त्वाम् प्रेष्यति।
यथाहं त्वां प्रीणामि।
त्वं यः माम् अमित्राः।
स्वप्नम् अभूत् उन्मतम्।
हस्ते आयाति नहि।
उड्डीयते मम क्षणम्।
मम हसनं त्वया
मम सुखं त्वया
तव ज्ञानं किम् उन्मतम्।
यद्दिने त्वाम् न पश्यामि।
मूढः इव अहं विचरामि।
कः त्वाम् एवं प्रेष्यति।
यथाहं त्वाम् प्रीणामि।

■■■

व्यर्थः मूर्खोपदेशः

– **रश्मिः यादवः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

कश्चन तमालवृक्षः आसीत्। तस्य वृक्षस्य शाखायाम् एकः नीडः आसीत्। तत्र कश्चन चटकः पत्न्या सह वसति स्म। कदाचित् वर्षाकालः आगतः। बहिः सर्वत्र शीतलं वातावरणम् आसीत्। नीडे तु औष्ण्यम् आसीत्। अतः चटकः निरातंकः आसीत्।

तदा कश्चन वानरः तत्र आगतवान्। वृष्ट्या तस्य शरीरं क्लिन्नम् आसीत्। शैत्येन सः कम्पते स्म। सः वानरः दन्तवीणां वादयन् वृक्षम् आरुह्य उपविष्टवान्। तं दृष्ट्वा चटका उक्तवती किं भोः भवतः हस्तपादसहितं सुदृढं शरीरम् अस्ति तथापि एकं गृहं निर्माय तत्र वासं कर्तुं भवान् किं न शक्नोति? किमर्थम् एवं शीतपीडाम् अनुभवति भवान्? इति। तत् श्रुत्वा वानरः उक्तवान् "रे अधमे! किमर्थं मौनेन न तिष्ठति भवती? मम विषये भवती किमर्थं चिन्तयति? इति। परन्तु चटका मौनेन न स्थितिवती पुनः तथैव उपदेशम् आरब्धवती। तदा वानरः कुपितः जातः। सः तां शाखाम् आरुह्य चटकायाः नीडं शतधा खण्डशः कृतवान्। एवं मूर्खम् उद्दिश्य उपदेशेन चटकायाः नीडः एव नष्टः अभवत्।

■■■

मूर्खमण्डलम्

– **रामपुकारः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

कस्मिंश्चित् अरण्ये कश्चन महावृक्षः आसीत्। तत्र सिन्धुकः नाम पक्षी वासं करोति स्म। तस्य पुरीषे सुवर्णम् उत्पद्यते स्म।

एकदा कश्चन व्याधः तत् अरण्यं गतवान्। तदा पक्षिणा तस्य पुरतः एव पुरीषोत्सर्जनं कृतम्। पुरीषे स्थितं सुवर्णं दृष्टवतः व्याधस्य आश्चर्यं जातम्। सः चिन्तितवान् 'जन्मनि एतावत्पर्यन्तम् अहम् एतादृशं विचित्रपक्षिणं न दृष्टवान्। अहो एतस्य पुरीषे सुवर्णम् उत्पद्यते। इति।

सः जालं प्रसार्य तं पक्षिणं गृहीतवान् पञ्जरे च। स्थापितवान् पुनः एतेन पक्षिणा अहं किं करोमि? एतादृशः विचित्रः पक्षी महाराजस्य समीपे एव भवेत्। अतः महाराजाय एव एतं पक्षिणम् उपायनीकरोमि, इति चिन्तयित्वा सः नगरं गतवान्। महाराजं दृष्ट्वा उक्तवान् च "महाराज ! एषः कश्चन विचित्रः पक्षी। एतस्य पुरीषे सुवर्णम् उत्पद्यते" इति।

महाराजः अतीव सन्तुष्टः। सः सेवकान् उक्तवान् "भोः सेवकाः। एतं पक्षिणं जागरूकतया रक्षन्तु। व्याधाय प्रभूतं पारितोषिकं यच्छन्तु" इति।

सेवकाः मन्त्रिवचनानुसारं पञ्जरद्वारम् उद्घाटितवन्तः। पक्षी पञ्जरतः उड्डीय राजभवनस्य उन्नते द्वारे उपविष्टवान्। तत्र सः पुरीषोत्सर्जनं कृतवान्। तत् पुरीषं सुवर्णमयम् आसीत्। राजादयः आश्चर्येण तत् दृष्टवन्तः।

तदा पक्षी चिन्तयति 'मूर्खः अहं व्याधस्य जाले पतितः मूर्खव्याधः मां महाराजाय दत्तवान्। सः मूर्खः महाराजः मूर्खस्य मन्त्रिणः वचनानुसारं मां बन्धविमुक्तं कृतवान्। एवं समग्रं जगत् एव मूर्खमण्डलम् इति।

पूर्वं तावदहं मूर्खः द्वितीयः पाशबन्धकः।

ततो राजा च मन्त्री च सर्वं हि मूर्खमण्डलम्।।

■■■

जीवनम् संघर्षसरः

– **संदीपः जायसवालः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) द्वितीयवर्षम्

निजमनोबलम् उन्नीय येन पुनः प्रयत्नः क्रियते।
सागरस्य वीचिः तस्य उत्साहस्य पुरः नतमस्तकं भवति।
जीवनम् एकम् संघर्षस्य सरः अस्ति।
तथापि उत्तमं कियत् अनुभूयते।
असाफल्यस-भयं निपीड्य निर्भीको योऽग्रेसरति।
निजजीवननौकां समुद्रं पारयति।
जीवनम् एकम् संघर्षस्य सरः अस्ति।
तथापि उत्तमं कियत् अनुभूयते।
संघर्षस्य निकषे यः साध्यं दर्शयति।
जगत्सर्वं नतमस्तकं भवति।
जीवनम् एकं संघर्षस्य सरः अस्ति।
तथापि उत्तमं कियत् अनुभूयते।
गिरेरुन्नतिं दृष्ट्वा यो न लक्ष्यात् पराङ.मुखः।
स तथैव साफल्यं स्पृशति स्वकर्मतः।
जीवनम् एकं संघर्षस्य सरः अस्ति।
तथापि उत्तमं कियत् अनुभूयते।

■■■

होलिकोत्सवः

– **सत्यम् कुमारः**
बी.ए. संस्कृतं (विशेषः) तृतीयवर्षम्

'होलिका' इति भारतस्य रंगोत्सवः अस्ति। अयमुत्सवः सर्वजनानां प्रियः उत्सवः अस्ति। जनाः नृत्यन्ति गायन्ति च। अयं फाल्गुनमासस्य पूर्णिमायां मन्यते। पुरा हिरण्यकशिपुः नाम्नः एकः राजा अभवत्। तस्य पुत्रः प्रह्लादः हरिभक्तः आसीत्। हिरण्यकशिपुः स्वपुत्रं मारयितुं बहु प्रयत्नम् अकरोत् किन्तु हरिप्रसादेन सः तु सुरक्षितः आसीत्। तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुः स्वभगिनीं होलिकां प्रह्लादस्य वधाय न्ययोजयत् किन्तु सा अग्नौ भस्म अभवत् परं प्रह्लादः सुरक्षितः आसीत्। अन्ते भगवान् नृसिंहः हिरण्यकशिपुम् अमारयत्।
होलिकादहनमुद्दिश्य होलिकोत्सवः प्रारभत्।

■■■

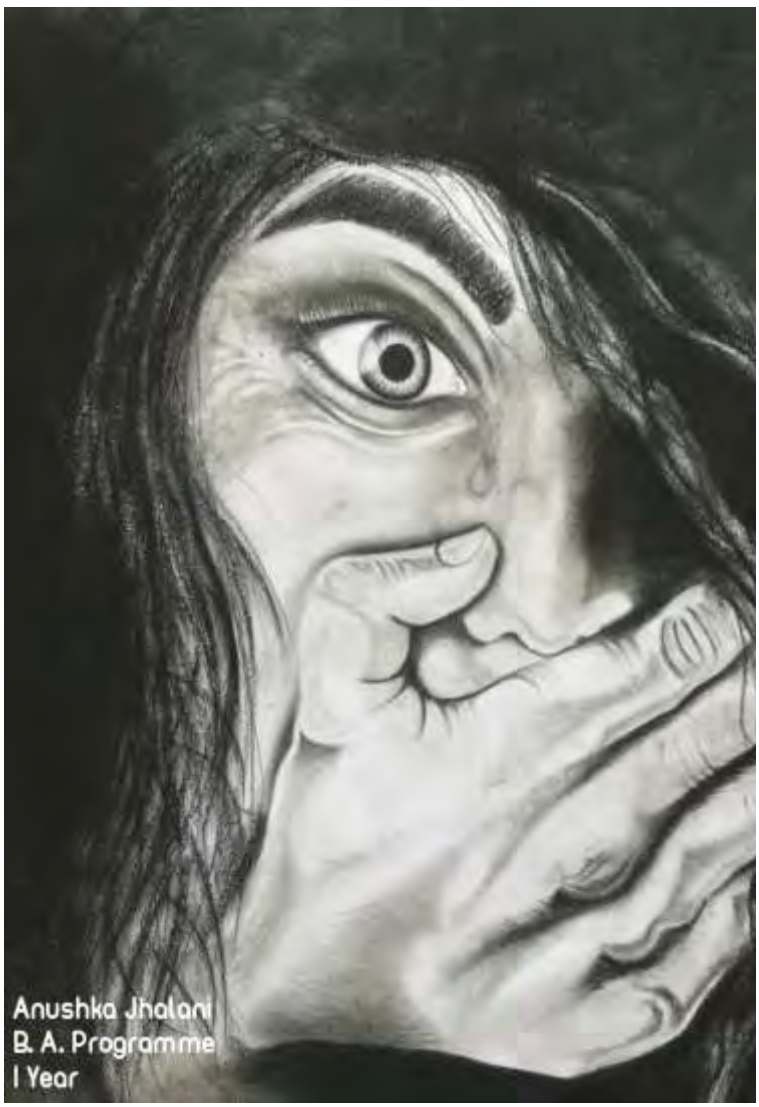

Anushka Jhalani
B. A. Programme
I Year

Anushka Jhalani
B.A. Programme
I Year

Somoshree Mahapatra
B. Sc. (H) Geology
I Year

Anushka Jhalani
B. A. Programme
I Year

English

Editorial Board

- MR. S. N. PRASAD
- DR. PRACHEE DEWRI
- MS. RUCHI SHARMA

Student Editors

- UJJWAL PARASHAR
- AREEB AHMAD
- SHIPRA
- SOUMYA VATS
- ANSHUMAN YADAV
- SMRITI VERMA
- SRISHTI GUPTA

Index

1. Exploding Grandmas | 54
2. The Political Snafu of the Century: Why the Berlin Wall Actually Fell | 55
3. Pride and Shame: An Evaluation of the Colonial Study of Indian History | 56
4. Air Pollution - If You Don't Kill It, It Will Kill You! | 59
5. Democracy and Universities in Delhi | 60
6. Going On | 62
7. They Cursed My Skin | 62
8. The Sea Does Not Dream Of You | 62
9. The Experience | 63
10. Let It Rain | 63
11. The Blue Ball | 64
12. Moments | 66
13. Silence | 66
14. Birth | 67
15. Let's Call It Love | 67
16. Muzaffarnagar | 68
17. The Soldier Who Didn't Return | 69
18. The Lost Boy with the Blue Toy Car | 70
19. The Bird which Never Returned | 70
20. Unread Messages | 71
21. Heal | 72
22. Late Night Parties | 73

Exploding Grandmas

- Srishti Gupta
English Hons IInd Year

I[st]

Dear diary, this is the twenty- fifth entry

The twenty-fifth discussion that I record

The four of them are in the next room,

Discussing. What? I do not know. But yes, this I know

How they look like at this moment, discussing things.

Ma will be screaming, her face red. Grandma shouting right back.

Accusations and wailings. New words I learnt today. A few things,

Which I'm forbidden to speak, or write, may have been spoken. Papa-

Harassed, tired, reasoning. Then quiet. Sitting with his head in his hands.

And Grandpa, lying on his bed, staring helplessly. Mute. A little dead.

Crash. Clatter. A curse. They are playing catch now. But they're not very good.

They don't play with a ball. They start suddenly, throwing the first thing they can reach.

And they throw too hard. Really, what were they doing in school, between periods?

But I am relieved when they start playing. Because in school, after the fight is over,

We play.

■■■

II[nd]

Dear diary, this is the twenty- sixth entry,

But this is not a discussion I record

Today is the day Grandma exploded.

Poor Grandma, too old to be playing catch.

I saw her clutching at her chest, where I usually laid my head

For a story. I don't know anything after that. They sent me to Uncle's house.

They didn't answer my questions. Maybe they are discussing.

Today Uncle took me to a party. A party with no colours.

A party where everyone was crying. Don't grownups know how to do anything?

A pile of logs. Are we having a bonfire, Uncle?

I saw them laying Grandma on the logs. And then light them.

She exploded in a burst of colour, reds and oranges and yellows,

I saw horses and dogs and three headed dragons in the flames.

Moral of the story- never play catch with anything but a ball.

Also, don't discuss things.

■■■

The Political Snafu of the Century: Why the Berlin Wall Actually Fell

- Dipayan Pal
History Hons Ist Year

In brief, the fall of the Berlin Wall occurred by mistake.

Gunter Schabowski was an East German apparatchik charged with holding a press conference that would alert Germany of new travel regulations. On 9 November 1989, shortly before that press conference, Schabowski was handed a piece of paper which he thought to be of business-as-usual that he didn't even read it before he approached the rostrum.

The speech was long and monotonous that it nearly put the crowd to sleep, until he referred to the minor changes to the travel code. Somehow, some journalists got the impression that East Germany was ready to drop restrictions entirely. One of the reporters asked him when the regulations would come into effect. Unable to find the answer, he shrugged and said, "As far as I know — effective immediately, without delay". The press ran back and informed the world that the East Germany had cancelled the Berlin Wall.

Thousands of East Berliners began proceeding to the six border crossings along the Berlin Wall. The situation became so intense that it was difficult for the authorities to handle. Although they considered firing on the crowd, they did not do so because they thought that doing so would surge the situation. So, the forces fell back, the Berlin Wall came down, communism ended in East Germany, David Hasselhoff sang a song named 'Looking for Freedom' and politicians around the world learned how important it was to read the speech before a press conference.

Schabowski was quickly expelled from the Party of Democratic Socialism, successor to the SED, aiming to ameliorate the party's image. Last year, he was also awarded the country's prestigious Order of Karl Marx.

Dear Politicians,

Please read your speeches before you speak,

You may lose a nation.

Yours sincerely,

A responsible citizen

■■■

Pride and Shame: An Evaluation of the Colonial Study of Indian History

- Mehvish
History Hons Ist Year

Because even God could not trust the English in the Dark!

- Shashi Tharoor

The British rule lasted in India for nearly 200 years. During this period, the British ruling elite managed to set up various mechanisms to further their agenda of appropriation and left behind a number of innovations in their wake without which life today would seem unimaginable. The railways today for instance are responsible for transporting 8221 million1 passengers from all parts of the country. However, was the British purpose of establishing the railways founded on virtuous and honorable intentions? It most certainly was not.

The erstwhile Indian Railways were originally constructed to primarily serve two British requirements. The first reason was to fulfill their need of resource exploitation. The colonial masters invested heavily in connecting the major port towns with areas within the country to facilitate their economic interests and with a view to allow for swifter transportation of larger quantities of goods within the country to be finally exported via the port towns.

The second interest was to establish a stronghold over the land from a defence perspective. It was felt that the railways would allow for swifter transportation of personnel to quell any uprising that may occur in various parts of the country. However, the flipside that the Railways could facilitate the movement of people and goods, such as food grains from one part of the country to another suffering famine, and thus serve the interests of the people they were ruling, was never the intent.

Another example of the development of a field of study and application jaded by the British perspective was the initiation of a systematic study of the history of India and its systematic use as a weapon to legitimize their rule and reinforce their superiority. A nation comprises its history. And it was this history that the British sought to uncover and later, denigrate. The fact that what was designed to shake the very foundations of the sense of national pride became one of the leading reasons behind the demand for a free nation, was however something beyond the British plan.

The British initiated systematic research in the history of ancient India as early as the eighteenth century2. They were interested in the learning of India's remote past and this curiosity may have been piqued by various reasons. The prime interest of the colonizers was to accelerate the economic interests of Great Britain. To this end, they sought to control, not merely the resources of the land, but the administrative control of its people.

This dominance, however, would have been ineffective with little or no knowledge of the lives of the people that the British sought to govern. Initially, this was achieved by involving indigenous social groups in regional administration and regulation of societal mechanism. However, the dependence was a source of concern and the colonial thinkers thus presented the need for understanding India's past to effectively control the Indian people independently.

Efforts towards understanding ancient laws and customs led to the establishment of the Asiatic Society of Bengal (1784). Sir William Jones, a civil servant of the East India Company, was responsible for its formation. The Asiatic Society of Bombay was set up in 1804 and the Asiatic Society of London was set up in1823.

The eighteenth century was marked by translations of certain texts which were considered significant. In 1776, the Manu Smriti (the law of Manu) was translated into English as A Code of Gentoo Laws. Jones translated the Abhijnanashakuntalam into English in 1789. The Bhagvadgita was translated into English by Charles Wilkins in1785. These texts were considered authoritative and were thus translated.

Such massive tasks were undertaken with a view to enhance the effectiveness of the British governance. However, this quest of understanding India's past was soon to transcend into a bigger objective of denigrating the Indian national character and legitimizing the very same rule that it initially sought to improve. The British devised a tactical approach of presenting Indian history as inferior with a view to establish their supremacy as a people and a culture above the ignorant Indian masses.

The Revolt of 1857 made the British realize that their understanding of India was flawed. Their approach to rectify this error was to thoroughly understand and grasp the nature of India's past.

Thereon, the British followed a three-fold approach when it came to the study and interpretation of the history and culture of India. The first was to question the ability of Indians to rule and govern themselves. Western scholars like Vincent Arthur Smith wrote massive volumes of work in which he defined India as always having experienced autocratic rule. In his work Early History of India, he stated that throughout its history, India experienced despotic rule. Secondly, they also questioned Indians' ability to record and interpret their history and pointed to a lack of notions of history and the sense of time. Following are excerpts from his book.

"...which attempt to give an outline of the salient features in the bewildering annals of Indian petty states when left to their own devices for several centuries, may perhaps serve to give the reader a notion of what India always has been when released from the control of a supreme authority, and what she would be again, if the hand of the benevolent despotism which now holds her in its iron grasp should be withdrawn."3

"...The political history of India cannot view it with that of Greece, Rome, or modern Europe as illustrating the evolution of constitutions in city or state. Indians, like other Asiatic peoples, usually have been content with simple despotic rule, so that the difference between one government and another has lain in the personal characters and abilities of the several despots rather than in the changes consequent upon the gradual development of institutions. The regulations devised by able individual autocrats, such as Chandragupta Maurya, Asoka, and Akbar, have mostly perished with their authors.

The nascent Indian constitution now in course of construction is a foreign importation, imperfectly intelligible to the people for whose benefit it is intended, and never likely to be thoroughly acclimatized. The most important branch of Indian history is the history of her thought. For the adequate presentation of the story of Indian ideas in the fields of philosophy, religion, science, art, and literature, a chronological narrative of the political vicissitudes of the land is the indispensable foundation. Readers who may find such a narrative dry, or at times even repellent, may take comfort in the conviction that its existence will render possible the composition of more attractive disquisitions, arranged with due regard to the order of time."3

The western political thought of Oriental Despotism was also employed to substantiate the need for foreign rule. Scholars like Montesquieu referred to Asia as the natural milieu of despotism. The theory was propounded by scholars such as James Mill, Hegel, Montesquieu, John Kaye and others. This idea was related to the theories of "Whiteman's burden", "Civilizing Mission", "Theory of Guardianship" by the British administrator historians (Anglicists) and was

used to impose an ideological supremacy over the Indian mind.4

R.S. Sharma argued that the generalizations made by colonialist historians were by and large either false or grossly exaggerated and served as good propaganda material for the perpetuation of despotic British rule. The western colonizers insisted on the fact that ancient Indians had no notions of history and had always experienced foreign rule as opposed to self-rule5. Such assumptions presented themselves as a source of great distress for Indian historians who were dismayed as they witnessed Indian historiography being distorted. The decaying feudal system in India was compared to the progressive capitalism of the west.

The third was inherently related to the imperialist's powers 'agenda commonly known as the "whiteman's burden". Many colonial writers, philosophers and historians believed that it was a powerful method for uprooting the Indian sense of culture and nationalism by questioning the ancient religions of India. When sufficient doubt and antagonism towards the local faiths had been generated, Christianity was presented as the supreme religion that could save the individual and thereby making the colonizers or as Max Muller described the Europeans, a superior race.

"...The Christianity of our nineteenth century will hardly be the Christianity of India. But the ancient religion of India is doomed — and if Christianity does not step in, whose fault will it be?"

Max Müller - Letter to the Duke of Argyll, published in The Life and Letters of Right Honorable Friedrich Max Müller (1902) edited by Georgina Müller.

Thus, the Indian, obsessed with life after death, needed someone to handle his present. Someone superior, accurate and rational, with their eyes set on the present. Who better than the British masters to fill the shoes? This role integration was further strengthened by the appointment of a viceroy, along the lines of a single ruler, as Indians had been accustomed to.

However, unlike those before, the British empire never intended to become one with the nation they sought to rule. They were limited to exploitation and amassing of profits from the Jewel of the British Empire, India. If such intentions required shaking the very foundations of a nation's sense of pride by questioning their existence, however old and important that may have been, the British knew that the utility of this tactic would have long standing effects on the roots of any struggle that may arise in rebellion.

BIBLIOGRAPHY

- (2017, April 10). Retrieved February 21, 2018, from www.indiatoday.in:https://www.indiatoday.in/india/story/indian-railways-increase-in-passengers-and-earnings-new-record-970634-2017-04-10
- Sharma, R. S. (2005). India's Ancient Past. New Delhi, India: Oxford University Press.
- Smith,V.A.(1914). Early History of India (Third Ed.), Oxford: Clarendon Press.
- Pradesh, O. (New Edition). Negating the Colonial Construct of Oriental Despotism: The Science of Statecraft in Ancient India.Retrieved223, 2018, from indicstudies.us:http://www.indicstudies.us/History/Oriantal%20PaperMod.pdf

1 (www.indiatoday.in, 2017)

2 (Sharma R., India's Ancient Past, 2005)

3 (Smith, 1914)

3 (Smith, 1914)

4 (Prakash)

5 (Sharma R., India's Ancient Past, 2005)

■■■

Air Pollution - If You Don't Kill It, It Will Kill You!

- Utkarsh Soni and Deepal Maurya
Zoology Hons IInd Year

Nature is giving us numerous hints, which need to be addressed on an urgent basis. One of the evident problems is air pollution, which occurs when harmful substances including particulates and biological molecules are introduced into Earth's atmosphere. It may cause diseases, allergies or even death to humans as well as other living organisms.

Burning of fossil fuels, emissions from industries, burning of wood and charcoal as fuel which in turn, emits CO, CO2 and other greenhouse gases which are the root causes of air pollution.

Air pollution causes diseases like irritation in the eyes, nose, mouth and throat. It majorly effects the respiratory system which eventually leads to asthma attacks and Chronic Obstructive Pulmonary Disease – COPD. It may also result in birth defects, immune system defects and cardiovascular problems like heart disease and stroke.

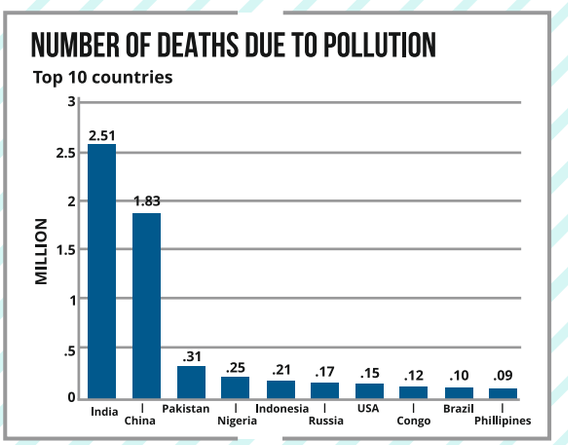

Air pollution in India is estimated to kill 1.5 million people every year; it is the fifth largest killer in the country. In November 2017, the Great Smog of Delhi started and the pollution levels spiked far beyond acceptable values.

Further problems can only be prevented by turning to green fuels. Industrial areas should be located at a safe distance from the residential areas and environmental norms should be judicially followed. Newly designed smoke-free furnaces should be used along with other eco-friendly products and awareness regarding them should be spread among the people. Methanol is added to the petrol for more efficiency. In 2002 all the buses were converted into CNG in the capital, which helped CO2 and SO2 levels. Introduction of BS-IV engine and electric vehicles are the only hope to save the planet from further destruction but the long-term solution is to educate the younger India for pollution-free future. Hence, if we amend on these steps, we can preserve our beautiful planet.

■■■

Democracy and Universities in Delhi

- Gaurav Banerjee
History Hons Ist Year

Democracy is a system of government in which the citizens exercise power directly or elect representatives from among themselves to form a governing body, such as a parliament. Democracy is sometimes referred to as "rule of the majority". Democracy is a system of processing conflicts in which outcomes depend on what participants do, but no single force controls what occurs and its outcomes. On looking into the terms of Indian democracy, one finds out that the Republic of India is the largest democracy in the world. India is the seventh largest and the second most populous country in the world. The world's largest democracy by electorate was created after independence in 1947 under the leadership of its nationalist movement, the Indian National Congress. Since independence, democracy has been kept at the forefront to represent the Indian politics at an international level. Every citizen of this sovereign country has been granted the right to choose their own representative. But, has it been the same in case of Indian universities?

Indian universities comprise of youth, the future of this huge and diverse nation, who'll further guide the nation towards prosperity and success. According to the education which has been passed on to us, democracy is a right which should be given equal access to everyone. Being the newest member of the University of Delhi, I got the opportunity to witness the historic elections which are held every year - the Delhi University Student Union (DUSU) elections and the individual college elections. This idea of having democratic elections at such a huge scale represents that universities are intrigued by the idea of democracy and how these elections are managed by the university every time is quite remarkable. This advent of elections and democracy in the lives of young people will lead to a betterment of democratic practices across the country.

Another aspect showing the democracy in Indian universities is that of the parliamentary system in Hindu College, University of Delhi. The college has its own student parliament. It is a representative body that has a Prime Minister with his/her cabinet, the leader of the opposition, speaker and the President. The members of this parliament are the students of the college who sustain the ethos of the system by coming out in large numbers to vote on the day of elections. The cabinet has ministers with individual responsibilities of finance, literature, sports, culture, etc. The Prime Minister, on his/her discretion, elects the cabinet ministers. Not only in Delhi University but also in Ashoka University, Sonipat, proper elections for choosing the student union are conducted in order to implement the right to democracy effectively. Going by the record, almost all the universities conduct democratic elections.

Although we agree with the fact that universities in our country practice democracy, every system has its own flaws and limitations. Many cases of violation of democracy have been found from time to time, in Indian universities. Take, for instance, last year's Ramjas College incident, when members of the ABVP could have attended the seminar, voiced their concern in a constructive way – they could even have protested in an adept manner – what happened was that the democratic form of protest was divorced from its argumentative character and got reduced to a culture of violence. Violence is not an idea, and should never be treated as one.

Another classic evidence of violation of democracy is the case of Jawaharlal Nehru University, in which three students were arrested on charges of sedition. In my opinion, there was no "anti-national" content in their speeches. The government is using nationalism and administrative power to vandalize the idea of constitutional patriotism and dismantle our institutions. The irony is that as a consequence of all this, democracy is getting threatened, which is the most anti-national of all acts.

I would like to conclude by pointing out to the fact that indeed democracy plays an important role in our Indian universities, shaping the young minds and giving them a platform where they could contribute in making India a great country. Even though it's not always practiced in an efficient manner, it holds the foundation of an academic institution and carves out a space for healthy, thought-provoking discussions on relevant subjects.

Nature is giving us numerous hints, which need to be addressed on an urgent basis. One of the evident problems is air pollution, which occurs when harmful substances including particulates and biological molecules are introduced into Earth's atmosphere. It may cause diseases, allergies or even death to humans as well as other living organisms.

Burning of fossil fuels, emissions from industries, burning of wood and charcoal as fuel which in turn, emits CO, CO2 and other greenhouse gases which are the root causes of air pollution.

Air pollution causes diseases like irritation in the eyes, nose, mouth and throat. It majorly effects the respiratory system which eventually leads to asthma attacks and Chronic Obstructive Pulmonary Disease – COPD. It may also result in birth defects, immune system defects and cardiovascular problems like heart disease and stroke.

Air pollution in India is estimated to kill 1.5 million people every year; it is the fifth largest killer in the country. In November 2017, the Great Smog of Delhi started and the pollution levels spiked far beyond acceptable values.

Further problems can only be prevented by turning to green fuels. Industrial areas should be located at a safe distance from the residential areas and environmental norms should be judicially followed. Newly designed smoke-free furnaces should be used along with other eco-friendly products and awareness regarding them should be spread among the people. Methanol is added to the petrol for more efficiency. In 2002 all the buses were converted into CNG in the capital, which helped CO2 and SO2 levels. Introduction of BS-IV engine and electric vehicles are the only hope to save the planet from further destruction but the long-term solution is to educate the younger India for pollution-free future. Hence, if we amend on these steps, we can preserve our beautiful planet.

■■■

Going On

- Tanya Budhwar
Economics Hons Ist Year

Every promise I made
Worn out
Cause every friend I had
Sold out
Every time I dared a step
I fell down
Still I am walking
Cause I have to go a long way
No matter how long is night
There will come a new day
This is a big journey
And no step is my last
I don't know if I am fast
But I have to walk
And just go on
If not with someone
Then alone
To get to my destination
To find that perfect door

■■■

They Cursed My Skin

- Abhishek Kumar
Computer Science Ist Year

They cursed my skin
for resembling the earth.
Not realizing, how the
blossoms confused it with
their home.

■■■

The Sea Does Not Dream of You

- Areeb Ahmad
English Hons Ist Year

The day before,
We climbed that hill
And on the summit
We sighed like kings
Our chests bloated
With self-importance
Our shoulders swayed
Under imagined burdens.
On this day,
Our hearts swollen
With blatant pride
We announced out deeds
To the big blue sky
But our shouts for approbation
Are met only with disregard
And the wide wild world
Trampled us into dust.
On the morrow,
We will forfeit this game
It seems we are beggars
Wandering in the desert
In search for approval
Expecting our every gesture
To be met with awe
In the hallowed halls of history.

■■■

The Experience

- Bhavya Rattan
English Hons IInd Year

I still remember the first time,
When my mother took me to the black room of light.
The darkness frightened me,
And room full of flashing eyes startled my sighs.
Clinging to my mother's hand seemed futile,
As the row of arms already parted our ways.
I closed my eyes tightly,
Wondering what will happen next.
And suddenly amid the startling sounds,
Black screen turned white.
Showcasing all shades of emotions,
I ever knew or could imagine in rhyme.
Running images created magic,
In a world I never knew exist.
It's the first time I realized,
That darkness comes to light.
And there's a beautiful reason,
Why movie theaters are black in sight.

■■■

Let It Rain

- Aditya Diwakar
Economics Hons Ist Year

Once the skyline turns grey
And it shouts and it thunders
Then let it rain, if it rains.
Paper boats, Little Sparrow
Garden Soil and the backyard children.
I stood and saw them wet.
Once it has rained and the
azure skies were deep again.
I wished some sunshine,
And hoped a little rainbow .
But soon it began to thunder
Again, the paper boat sailed,
The little sparrow flew all wet
And the backyard children
brown with the garden mud.
I stood there, saw the rain,
Autumn, Winter, Spring, Summer
Once again monsoon came,
By this time I had known,
If it rains then let it rain.

■■■

The Blue Ball

- Bhavya Rattan
English Hons IInd Year

Bella can clearly see the blue ball hanging down from her bedroom window. The blue ball mimicking the grand earth is part of her neighbor Will's own private galaxy resting on his steep aperture. Glancing at the cauldron of life used to fetch her answers in the past but now the microdot space lost its purpose for her.

Her life is left no more than a paradox. The budding writer with two books published, ardently waiting for the third is now bereft of her imagination. Her writing blocks obstructed her way to the top and she is stuck teaching children how to be creative while she barely remembers it herself.

Her pretended happiness can fool all but not her fair friend Shelley, "Stop tormenting yourself, Bella. It's time to move on, use your intellect and get a job. Decreasing numbers in your teaching batch and increasing numbers of your useless scribbling are enough to motivate you to give up writing."

"I am fit for nothing else. I can't just get over it." Bella replied in her screeching tone full of tears.

"You must rise over it. Join the typewriting job in my office from next month. You can earn more than you do now and with your hard work, I am sure you can enter boss's good books. I am doing this for you Bell, believe me."

Shelley went away after a cup of coffee, leaving Bella all alone. She knew her friend cared for her but typing facts instead of fiction was beyond her thoughts. She spent the night thinking, pondering over her friend's words, constantly changing sides on her bed and her mind. She decided to look one last time at the blue ball which she no longer could find. Her thoughts took a swift turn and then she was more bothered to find reason of its disappearance.

Bella knew Will as an introverted boy always studying and remaining indoors. His mother, a kind woman, greeted Bella with a smile every time they met in society meetings. With these thoughts in mind she politely banged the door at the Tudor residence. After few moments of anticipation, Mrs. Tudor answered the door. Much to Bella's dismay, Mr Tudor's pleasant smile did not accompany her this time and she started staring at Bella for a possible explanation of her arrival.

"I am sorry to disturb you on this chilly afternoon, Mrs. Tudor. I am Bella. I live in the opposite apartment. From the past two-three days, I couldn't see you. Last night I couldn't find the blue ball galaxy adorning Will's window. I've been admiring its presence for several months now. I feel a connection with the creation and maybe with its creator too. If you don't mind, can I meet Will?" Bella completed this without a single pause waiting for an urgent positive reply.

But suddenly her listener started crying and she had to enter the house to pace down its owner. After arranging for a glass of water and calming Mrs. Tudor down, it was time for Bella to stare at her in astonishment.

She began with a teary voice, "Will...Will... I wish you could meet him. He is no more with us. His tuberculosis made him weak and this chilly weather

made him get worse. 'The blue ball galaxy', it's a nice name. Will would have loved it; he used to call it his galaxy from which no one could drive him out. He used to write about planets, draw the Earth on sheets and dream of a normal life in which he could go out, play and enjoy."

Bella didn't know what to say. She really wished that she had visited Will earlier and thanked him for all the hope his galaxy had given her. She just condoled with Mrs. Tudor and hurried towards the door when suddenly Mrs. Tudor followed her and gifted her Will's galaxy full of blue balls.

"I think you should have it. Will never had friends; we were always on the move, in search for good doctors. You are the first person who admired Will's work, used to admire it even from a distance. I got that thing out because it made me remember Will but maybe it can help you feel good."

Short of words, Bella accepted the gift and hurried back home. She fixed it on her window pane and spent the rest of the day staring at her. She glanced over at the typewriter accompanying the galaxy (which she can now notice is made up of little planets, stars and suns) and the next thing she knew, she couldn't stop her fingers from typing furiously. The next day when Shelley came to visit, Bella was ready with her third book. It was not about anything else but that very same blue ball.

Looking at that blue ball that day gave her hope. The hope of fulfilling her passion that was so small in comparison to Will's impossible dream of survival. She had the perfect setting, beautiful theme and upsurge of emotions but the best thing about her third book and following many others was the true desire to express.

That day, Will's galaxy made Bella ponder about her lost efforts, her deprived urge to write. She could feel the insinuating orbits fueling her hidden passion and making her recall Will efforts to make his place so ardently, which he couldn't but she probably could.

Bella changed many homes, travelled and wrote about the world but one thing that never left her bedroom window is the blue ball galaxy that still fills up many other bereft seekers like her with a hope to rise.

■■■

Moments

- Tanya Budhwar
Economics Hons Ist Year

Moments are moments
Whether good or bad
You have to preserve them
Whether happy or sad
For they remind you
Who you are
They measure the distance
You have walked
Are the times of loneliness
They will tell you
You are not alone
At the times of joy
They will find you
People to carry along
When things will go bad
They will make you laugh
And when you are lost
They will make you cry
They will make you give your lost hobbies
Just another try
Past is not just past
It is a journey
Moments are not just moments
They are a treasure
Whether full of gloom
Or sing of pleasure

■■■

Silence

- Areeb Ahmad
English Hons Ist Year

I do not remember now
How it all started
In a single room
Bound by four walls,
Where lived two people -
One decided to stop speaking
And the other followed suit.
Time passed and memories blurred.
Perhaps it was me
Who stopped first
Or maybe the other.
Covert glances shared
As we stared into oblivion,
Both keeping quiet.
Not wanting to be the one
To break this incomprehensible void.
The room is no more,
The years have swept by
One after the other.
Like the waves crashing
Against the shore -
Gathering in their wake,
The dust of time.
But that silence has stretched forever.

■■■

Birth

- Areeb Ahmad
English Hons Ist Year

In frigid wastelands,
Hope is born.
Burgeoning in the
Hearts of men.
Despair giving way
And bowing down.
In raging infernos,
Stars are born.
Fires of creation
Spreading across oblivion.
From nothing to something
The blossoming of life.
Under debilitating doubt,
Faith is born.
Mind over matter.
It touches the strings
Of the universe itself
And achieves impossibilities.
Under crushing weight,
Gems are born.
Purity is a curse.
The defects add lustre.
Perfection is the bane
Of interminable growth.

In passionate embrace,
Love is born.
Through shared glances
And words of grace.
Seated in the heart,
It conquers the soul.
In wishful utterance,
Miracles are born.
Straddling the realm
Of divine interventions.
Manifestations of entropy
Leaves us spellbound.

■■■

Let's Call It Love

- Abhishek Kumar
Computer Science Ist Year

Her smile so bright,

It lightened up his day.

Her feet so light,

She stepped into his heart without any delay.

Her presence was love,

And she became his treasure trove.

Her hair a cascade,

Seeing them, his heart got slayed.

Her eyes pierced his soul,

Warming a heart which was left stone cold.

The words she spoke etched his heart,

And she became such an important part

Of his life which was so wrecked,

She seemed so perfect, so correct.

He wished for her every night,

Sleepless as they were, her image blurring his sight.

She was so far yet so close,

But he wasn't the one she chose.

Devastated from head to toe

His cheeks carving way for his tears,

It was not meant for him, he realized so slow,

But deep inside he still wished for her even if it took a thousand years.

■■■

Muzaffarnagar

- Anushka Goel
English Hons Ist Year

It was a beautiful, sunny day
but the clouds have terrifying shapes,
My nostrils sniffed- a curious mélange of odours,
blood, dust and iron
I sniff the wall and lo! It wafted from there

Silence- noisier than screeches of Allah-o-Akbar
And Jai Shree Ram,

I ran downstairs,
It was the same dread I'd felt last night too,
Dad furrowed his eyebrows deeper than usual.

He said Akbar loves Ram and Ram loves Akbar too,
So they crammed their children's huts into
dormitories
And waited-
As the flames had their meal of cement and a
hundred hapless bodies and metres and metres of
flesh smouldering spouts of sooty smoke,
Till all that's left,
Is a mangled mass of bone and ash.

The husk of the night fell,
my cheeks still glowing a saline crimson,
I try to shovel,
A grave up in the air,
So that my grandpa won't lie too cramped.

Three years have crawled by in a hazy blur,
I remember not wanting to,
But I think I packed that riot with me in my
suitcase- and, my skin.
I still wear it- a shroud over my skull,
I still hear it- its quiet breath at the back of every
headline I read,
it lathers my soles in the bath,
it hovers over me at the bathroom sink
It tries to touch my hand but I never meet its gaze.

But Delhi was kind to me;
so Muzaffarnagar seldom visited me here,
like that uncomfortable dream we like to pretend,
to have forgotten but it's there.
Often, I see our riot living in concentration camps,
I don't want to stay, but here I am;
handcuffed to this scarred skin, no matter how
fast I ran, no matter how fast I swam.

■■■

The Soldier Who Didn't Return

- Areeb Ahmad
English Hons Ist Year

The flowers on the broken window sill had turned dusty yellow, then gray and then had withered off in dry flakes till they were nothing but brown arid stalks with some remains attached. The small and wizened fruits kept in the tattered brown basket had shriveled more and now gave the sweet and cloying scent of rot. The food in the covered battered pot kept beside the handmade mud stove may have been tasty once but now it had become rancid and stench was wafting of it in waves. The clean sheets on the small cot in one corner of the hut were filled with dust and the old woman who sat on them looked on morosely at the small bamboo door of the hut but no one knocked.

The woman had been sitting like that for the past two days. She had neither eaten nor drunk anything since the last small meal she had three days before when she had heard the news which had lifted off the sadness from her heart. She just sat silently waiting for her son who had gone to war. The war in Europe had ended two days ago with Germany surrendering to the Allies and all conscripts had been given the permission to return to their homes. Two days had passed and her son had still not come. The woman was long past the stage of grief. She was a broken thing and broken things don't cry. They can be only mended and made somewhat whole. But that was to be the job of her son.

He would come with a smiling face and lift her up in his strong arms and twirl her around till she forgot every worry. Her son had been eager the day the white people had come to do the recruiting. She had said that they were Indians and the wars that their white-skinned slavers fought had nothing to do with them. He had laughed at her words saying that if the Englishmen were going to stay a little more in their country, they may as well help them maintain their economy. That was how naive young men who want to become soldiers are, the woman reflected thinking back. That had been the last time she had heard her son and she thirsted for more. Many of the other young men who had gone to the war had not returned, but she felt sure that her son would.

At that time there was a small rapping of knuckles on the weak door. The hopes of the old woman rose. At last her son had come back. She would spend all her savings and buy some white flour from the village grocer. She would make sweets and small delicacies for her only son, now a soldier returned. But when she opened the door it was not the smiling face of her young son she saw but the scarred and pockmarked face of the village postman, a veteran of war himself. His eyes provided a silent sympathy and the shoulders of the woman sagged. Silently and with a face as white as a newly washed sheet she took the white folded telegram from the postman, her hands trembling.

The paper said – 'Navjot Singh, Killed in Action'. That was when the broken thing really shattered. Her son was another of those soldiers who didn't return. And as her heart shuddered with the onslaught of a stroke, she smiled at the thought that he would have his mother by his side. They would live in a place where good people like her son went and they would meet freedom there. Finally. With the vision of a beautiful garden somewhere in her mind and a small smile on her lips, the old woman slipped to the floor and took her last breath.

■■■

The Lost Boy with the Blue Toy Car

- Aditya Diwakar
Economics Hons Ist Year

I sat along the window of my rooftop
Saw some trucks and people pass.
And longed for the little boy whose
Blue toy car was lost in the grass.
Dust and dirt had dimmed the horizon
Lost the vision and could not see far.
By this time the dusk had dawned
Blue toy car replaced with cigar.
I sat along the window of my rooftop
Saw more trucks and people pass
Longed again for the little boy
Who found his blue toy car but
Lost himself in the aging grass.

■■■

The Bird which Never Returned

- Aditya Diwakar
Economics Hons Ist Year

Still, away from our selfish sights
Far from the glitter and city lights
When you travel to the countryside
There lives a man with wrinkled skin
And grey hair calm like the ocean
And twice as old as the moon.
He had no whims no wish no fantasy,
But every evening he looks at the sky
Longing for his little bird he set to fly.
The bird flew a million miles, oceans five
Continents seven and still soared high.
But every evening the man looks at the sky
Longing for his little bird he had set to fly.

■■■

Unread Messages

- Soumya Vats
English Hons Ist Year

In the beginning,
Sometimes I left messages on the street.
Short glances with long stories,
Little whiffs of the storm within me.
Sadistic paperbacks carried intentionally
With dark clothing in the backdrop.
Or the blackness my eyes soaked in
From deep thoughts and shallow words.
But your sight would always
Find home in the prettier ones,
As their scar-less hands stroked yours
Those, colorful on the inside out.
Because who'd behold pebbles
When gemstones are laid out?
As my words dissolve
Into the bedlam of life.
Words,
Of dreams being unfinished,
Due to alarms.
Flights being missed,
At the last hour.
Goodbyes being faked
When going afar.
I now speak in voiceless gestures
And fleeting eye contacts
That don't give away much.
So I slam the doors, a little louder.
Slouch, a little lower.
Walk, a little slower.
Sleep, a little lighter.
And think,
What if my skin yearned for silk
Like it does for steel?
What if kohl
Replaced red under my eyes?
What if the silence
Didn't make my ears ring?
And what if my mouth
Screamed the burning letters?
If only,
You'd read the messages on the street.

■■■

Heal

- Soumya Vats
English Hons Ist Year

I do not know the art of healing
But mending is second nature
To my eggshell fingers
That stitch up and wrap around wounds
Like a mother's arms lulling her newborn.
I plaster tears
With band-aids of happier tomorrows
Before you can strike the first blow.
My weaknesses locked in airtight Tupperware
Kept in crevices and folds of me
Long since forgotten.
But,
An arrow might hit now and then
Its pain dawns in unguarded moments
Twinges of not belonging
Open gashes of sleepless dreams
Lesions of fragile relationships
These leave scars-
Like cracks
On my favorite mug
But my skillful fingers mend them
Without a trace.
Too bad you can't see
The tapes and glue
That hold me together
They wither away after a while
Leaving my pieces
Unhealed
Exposed.
So hold me in my cracked-vase-form
Or embrace me tight
Until my fragments unite
In your healing palms.
For I have been broken
Far too many times.
And I have been held
Far too few times.

■■■

Late Night Parties

- Soumya Vats
English Hons Ist Year

Anxiety is that fun-loving friend
Who decides to show up suddenly
Its spontaneity meets me 10 minutes before bedtime
And invites me to a party in the pit of my stomach.
It's a happening evening of
Teeth biting
And obsessive scratching
And self-loathing
That dance at the tip of my tongue
Like a toxic cocktail
Handcrafted by the finest
Points of existential crises,
With crunchy bits of insomnia
Garnished with bits of nauseating nostalgia,
Served with a squeeze of unease.
Anxiety has me drunk on tears in no time
We play beer pong with my thoughts
And then put them on shuffle like party tracks
The next moment- I'm swaying to my childhood fears
And future hopes that seem as fragile as my sanity.
The beats resemble my heart's thudding sounds
And the dance a trembling of my lips.
I drunk dial my friends
But they have healthy sleeping schedules.
It leaves me exhausted but
The thudding is too loud and
the silence too deafening
By the time it dies down,
The sun comes up.
And the hangover
Oh the hangover
I wish I could cure it with a greasy breakfast
or a bitter spinach smoothie
but it leaves only with a
goodbye hug so tight my ribs hurt
with its determination.
The pain a promise
that night is never too far
and neither is my fun-loving friend Anxiety.
Who sure as hell ain't much fun.

■■■

Anushka Jhalani
B. A. Programme
I Year

Harikrishnan P
B. Sc. (H) Anthropology
II Year

Harikrishnan P
B. Sc. (H) Anthropology
II Year

Sagarika Rao
B. Sc. (H) Anthropology
III Year

Anushka Jhalani
B. A. Programme
I Year

Yamini Khanna
B. A. (H) Economics
I Year

HANSRAJ COLLEGE
University of Delhi

Delhi University Gold Medalists 2017-18

Sudeshna Biswas
M.Sc. Anthropology

Tusharika Singh
M.Sc. Geology

Rohit Kumar
M.A. Sanskrit

Srijan Srivastava
Integrated B.Sc.-M.Sc. Geology

Preksha Sahai
B.Sc. (H) Anthropology

Atul Kumar Shukla
B.A. (H) Sanskrit

Anirbaan Banerjee
B.A. (H) English

HANSRAJ COLLEGE

University of Delhi

Tel.: 011-27667458, 27667747 • Fax: 011-27666338
Email: principal_hrc@yahoo.com • www.hansrajcollege.co.in